॥ श्रीहरिः ॥ 1923▲

भगवत्प्राप्तिके सुगम साधन

जयदयाल गोयन्दका

1923

॥ श्रीहरिः ॥

भगवत्प्राप्तिके सुगम साधन

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
के प्रवचनोंसे संकलित

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

निवेदन

सभी सद्‌ग्रन्थों एवं संतोंका कहना है कि मनुष्य-जीवन केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही है। मनुष्य-जीवन पाकर भगवत्प्राप्तिके लिये साधन न करना सबसे बड़ी मूर्खता है। भगवान्‌की कृपा मात्र मनुष्यपर है। उसे केवल अपने ऊपर अपनी कृपा करनी है। अपने ऊपर अपनी कृपाका तात्पर्य है कि तत्परतासे भगवत्प्राप्तिके लिये साधनमें लग जाना है।

श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका इस युगके एक भगवत् अधिकार प्राप्त महापुरुष हुए हैं। उन्होंने सभी मनुष्योंको आध्यात्मिक सत्साहित्य सस्ते मूल्यपर प्राप्त हो जाय, इसके लिये गीताप्रेसकी स्थापना की, ताकि सत्साहित्य पढ़कर मनुष्य अपना चरित्र ऊँचा उठाकर अपने कल्याणके लिये सुगमतासे अग्रसर हो सके।

सभी मनुष्योंको कुछ न कुछ शौक होता है—खानेका, पहननेका आदि। श्रद्धेय श्रीगोयन्दकाजीका शौक आध्यात्मिक प्रवचन करनेका था। एक दिनमें दस-बारह घंटे प्रवचन करनेपर भी उन्हें थकावट महसूस नहीं होती थी। उनके प्रवचनोंमेंसे कुछ प्रवचन इस पुस्तकमें दिये जा रहे हैं।

इन प्रवचनोंमें भगवत्प्राप्तिके बहुत सुगम साधन बताये गये हैं। समयपर प्रेमसे संध्या करना और बलिवैश्वदेव नित्य करना, सर्वथा निष्कामभावसे एक गिलास जल ही पिलाना, एक बार भगवान्‌के मैं शरण हूँ इस प्रकार कह करके निश्चिन्त हो जाना, नामजप, ध्यान, मान-बड़ाईका त्याग, भगवान्‌में एवं साधनोंमें श्रद्धा होना आदि बहुत ही सुगम उपायोंसे मनुष्य अपना कल्याण निश्चित रूपसे कर सकता है।

संसारमें मनुष्य सुख चाहते हैं परन्तु सुख प्राप्त करनेसे वंचित रह जाते हैं। दूसरोंको दुःख देकर नहीं अपितु सुख देनेसे ही मनुष्य सुखी हो सकता है। भक्ति और भक्तके लक्षणोंपर प्रकाश डाला गया है। साधनोंका रहस्य एवं भगवत्प्राप्तिमें खास बाधाओंका भी विवेचन हुआ है।

ऐसे मार्मिक प्रवचनोंको पढ़कर भाई-बहिन अपना जीवन भगवत्प्राप्ति करके सफल बनायें, इस भावसे इन प्रवचनोंको पुस्तकका रूप दिया गया है। आशा है पाठकगण इसे पढ़कर दूसरे भाई-बहिनोंको पढ़नेकी प्रेरणा देनेकी कृपा करेंगे। हम उनके कृतज्ञ होंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

साधनोंका रहस्य

ज्ञानके साधनमें वैराग्य और उपरतिकी बहुत आवश्यकता है। जबतक देहमें अभिमान है, तबतक ज्ञानमार्ग समझमें आना कठिन है। देहसे रहित होनेसे ही वह बात समझमें आयेगी। अभ्यास करते-करते भी देहमें अभिमान आ ही जाता है। जिस प्रकार यह बात समझते हुए कि स्वार्थ नहीं आना चाहिये, काम पड़नेपर स्वार्थ आ ही जाता है। यह साधनकालकी स्थिति है, सिद्धावस्थाकी नहीं। देहाभिमानका नाश करना बड़ा ही कठिन है। विवेकके द्वारा समझता है कि मान-बड़ाई घातक है, किन्तु आकर प्राप्त हो तो इसमें बह ही जाता है। उसको त्यागना जिस प्रकार कठिन है, उसी प्रकार देहाभिमानका त्याग करना कठिन है। स्वार्थबुद्धि, देहाभिमान, मान-बड़ाईकी इच्छा—इन चीजोंका त्याग बड़ा कठिन है। देहाभिमानकी जड़ अविद्या है। इन सबका मूल कारण अविद्या है। यह बात युक्तियोंसे सिद्ध होती है, फिर भी मनुष्य अज्ञान नहीं मिटा रहा है। समझता है कि यह भाँगका नशा है, फिर भी हटानेकी चेष्टा नहीं करता है।

अबसे लेकर मरणतकका समय है। कोई भी मनुष्य यह विचार कर समय नहीं बितावे कि समय अपरिमित है। अज्ञानके कारण समय व्यर्थ बीत रहा है। कई बार बताया जाता है कि आपलोग जो पूजापाठ करते हैं उसमें सुधार करनेसे लाभ हो सकता है, फिर भी नहीं किया जाता।

समझते हैं कि क्रोध करना बुरी चीज है, पर मनके प्रतिकूल अवस्था प्राप्त होनेपर क्रोध आ ही जाता है। विचारके द्वारा बुरा समझते हैं, तब भी यह आ ही जाता है।

इसे दूर करनेके लिये खूब प्रयत्न करना चाहिये, बहुत प्रयत्नकी आवश्यकता है। प्रयत्न तो करते नहीं है, पोलमें ही उसे दूर करना चाहते हैं।

प्रवचन-दिनांक—९-५-१९४३, टीबड़ी, स्वर्गाश्रम।

हरिका मारग है शूराँको नहिं कायरको काम।

खूब प्रयत्न करना चाहिये, ईश्वरकी शरण होकर प्रयत्न करे, फिर कोई कठिनता नहीं है।

नित्य एकान्तमें बैठकर ईश्वरसे प्रार्थना करे, रोवे कि हे प्रभो! रक्षा करें। रक्षा तो करानी है, किन्तु पोलमें चाहते हैं। भगवान् तो दासोंके दोषोंको देखते ही नहीं, आँख मीच रखी है।

ज्ञानमार्ग समझमें आ जाय तो यह भी सुगम है—

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥

(गीता १४। १९)

जिस समय द्रष्टा तीनों गुणोंके अतिरिक्त अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता और तीनों गुणोंसे अत्यन्त परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।

संसार गुणमय है, इससे अपने आपको अलग देखे, अपने संकल्पके आधार पर सबको देखे।

मार्ग तो तीनों ही सीधे हैं, तीनोंमें जो-जो कठिनाई है उन्हें हटाना चाहिये। खोज-खोजकर कठिनता हटाये, कर्मयोगमें कठिनता है स्वार्थ और आसक्ति, इनका त्याग हो जाय तो कर्मयोगका मार्ग सीधी सड़क है।

आसक्तिका दोष तो सभी मार्गोंमें है, इसलिये वैराग्यकी सभी मार्गोंमें आवश्यकता है।

बार-बार प्रार्थना करे, रोवे। बालकका काम तो रोना है।

नामका जप और स्वरूपका ध्यान सभी मार्गोंमें इनकी आवश्यकता है।

ध्यानके स्वरूपका वर्णन

ध्यान तो यहाँ स्वाभाविक ही लगता है। जिसका ध्यान नहीं लगता है, गंगाके किनारे बैठकर उसका ध्यान भी लग सकता है। गंगासे स्पर्श करके जो वायु चलती है उससे प्रत्यक्षमें शान्ति मिलती है। शान्ति मिलनेसे ध्यान लगता है। ध्यानकी ऐसी सुविधा आपको कहीं नहीं मिल सकती। यहाँ तो सभी साज ऐसा ही है, ईश्वरने प्राकृतिक बना रखा है। यह तपोभूमि है। कानोंमें ध्वनि पड़ती है तो गंगाकी, स्थान गंगाका, पान गंगाका, दर्शन गंगाका। यहाँ गंगाकी रेणुकाका आसन है, इसके समान कोई पवित्र नहीं। दर्शन भी इससे बढ़कर क्या होगा? साक्षात् भगवती है। वटवृक्षसे स्वाभाविक ही शान्ति मिलती है। हर एक वृक्षोंमें ऐसी बात नहीं है। भूमि समतल है। यह बनायी हुई नहीं है, प्राकृतिक बनी हुई है। सारा साज इसी तरहका जुटा हुआ है। ध्यानके लिये विरक्त पुरुषोंको सात उपाय बताये गये हैं। वे सातों ही यहाँपर हैं—

१. गंगा २. चारों ओर वन, ३. चारों ओर पहाड़ ४. वटवृक्ष, ५. गुफा, ६. गंगाजीकी रेणुका ७. सत्संग।

इस समय कमी तो केवल परिश्रमकी ही है।

यह भूमि पवित्र है, जल पवित्र है, रेणुका पवित्र है, एकान्तवास यहाँ है ही। सत्संगके लिये जो आते हैं, उनका संग सत्संग ही है। रेणुकाका उत्तम आसन है—**चैलाजिनकुशोत्तरम्।** वस्त्र, मृगचर्म और कुशा तीनोंके समान गंगाजीकी रेणुकाका आसन हो जाता है। हाथ, पाँव अपनी सुविधाके अनुसार रख

प्रवचन-दिनांक—१०-५-१९४३, प्रात:काल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

लो। दृष्टि नासिकाके अग्रभागमें रख दो, आलस्य नहीं आवे तो आँख बंद कर लो। जब आलस्य आयेगा तब **समं कायशिरोग्रीवं** रह ही नहीं सकता। जब आलस्य आता है तब गर्दन एवं कमर झुक जाती है। इस प्रकारसे बैठकर फिर संकल्पका त्याग कर दे और परमात्माका ध्यान करे।

मनमें यह विश्वास रखे कि संकल्प आ ही कैसे सकता है। मनसे पूछे क्या चाहता है तो यही उत्तर मिलेगा कुछ नहीं चाहता। संकल्पका त्याग कर दे। उसके बाद परमात्माके स्वरूपका ध्यान करे। अपने इष्टदेव जो हों—राम, कृष्ण या विष्णु किसीका ध्यान करे, बात एक ही है।

बड़ा विकट समय है, संकटकाल है। इस समय तो सत्संग करे और दुःखी-अनाथ लोगोंकी सेवा करे। अपने पास जो कुछ है तन, मन या धन, जितना लगाया जा सके, आँख मूँदकर लगावे।

पानी बाढ़े नावमें घरमें बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम॥

खर्च नहीं करेगा तो डूबेगा। खूब उदारताके साथ सेवा करे। शरीरसे सेवा, वाणीसे जप, मनसे ध्यान करे। सत्संग, भजन और ध्यान—इन तीनोंका नाम ही भक्ति है।

कानोंसे श्रवण, वाणीसे नामका जप और मनसे स्वरूपका ध्यान—तीनोंसे भगवान्‌को पकड़ो। एकमें ही भगवान् अटक जायँगे तो बेड़ा पार है। यही प्रह्लादका, शाण्डिल्यका और रामायणका सिद्धान्त है।

भगवान्‌का ध्यान करते-करते प्रवीरकी मृत्यु हुई थी। हमें भी भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये—हे प्रभो! प्रवीरकी तरह ही आपका ध्यान करते हुए हमारी भी मृत्यु हो। इस बातको ध्यानमें

रखकर भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। वे हमारे हृदयमें बसें, हम और कुछ नहीं चाहते। भगवान् रामके ध्यानके पूर्व भगवान् श्रीरामका आवाहन करना चाहिये, जैसे भरतजीने किया। चौदह वर्ष समाप्त होनेमें एक दिन बाकी है, भरतजी व्याकुल हो गये तो भगवान् तुरन्त ही आ पहुँचे। इसी प्रकार हमलोग व्याकुल हो जायँगे तो भगवान् आ ही जायँगे। हम भगवान्‌से प्रार्थना करें—हे नाथ! हे दीनबन्धु! आप अभीतक क्यों नहीं आये!

कारन कवन नाथ नहिं आयउ । जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥

हे नाथ! हे प्रभो! आप अभीतक क्यों नहीं आये! सम्भव है आपने कुटिल समझकर मेरा त्याग कर दिया। हमलोग भगवान्‌से प्रार्थना करें, प्रभो! ध्यानावस्थामें भी आप नहीं आये, क्या उसके लायक भी हमलोग नहीं हैं।

एक बात मैं पूछहुँ तोही । कारण कवन बिसारेहु मोही॥
मोसे दास बहुत जग माहीं । तोसे नाथ जगत केहु नाहीं॥

हे नाथ! एक बात मैं आपसे पूछता हूँ, आप मुझे कैसे भूल गये! आपके जैसे तो बहुत हैं नहीं, आप जब मुझे बिसार देंगे तो फिर मेरा क्या होगा। हे नाथ! हे दीनबन्धो! आप विलम्ब क्यों करते हैं। क्यों तरसा रहे हैं, यदि आप मेरी करनीकी ओर खयाल करेंगे तब तो आपका आना कठिन ही है। हे प्रभो! ध्यानमें तो दर्शन दीजिये। आनन्दमय! आनन्दमय!! आनन्दमय!!!

नाथ सकल साधन मैं हीना । कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

हे नाथ! मैं सम्पूर्ण साधनोंसे हीन हूँ, न मुझमें ज्ञान है न भक्ति है। आपने ध्यानमें आकर दर्शन दिये, यह आपकी बड़ी कृपा है।

भगवान्‌का अलौकिक स्वरूप है। भगवान् राम अयोध्यामें जगत्-जननी जानकीसे मिल रहे हैं, उनका वह स्वरूप मनरूपी

नेत्रोंके सामने है। मानो सोलह वर्षके राजकुमार हों। प्रभुका स्वरूप बिजलीकी तरह चमक रहा है। प्रभुकी लम्बाई साढ़े छः फुट है तथा चौड़ाई डेढ़ फुट की है। प्रभुका कैसा अद्भुत स्वरूप है। भगवान् दिव्य स्वरूपसे दर्शन दे रहे हैं। भगवान्‌के चरण चमकीले हैं। पीताम्बर चमचम चमकता है, अलौकिक स्वरूप है। कमरमें पतली रत्नोंकी तागड़ी (करधनी) पहने हुए हैं। रेशमी दुपट्टा ओढ़े हैं। दो भुजायें हैं, एकमें धनुष, एकमें बाण लिये हुए हैं। धनुष कंधेपर रखा हुआ है। भगवान् आकाशमें हमारे सम्मुख खड़े हैं। गलेमें अनेक प्रकारकी स्वर्णकी एवं मोतियोंकी मालायें हैं। कौस्तुभमणि और वनमाला पहने हुए हैं। हृदयके ऊपर भृगुलताका चिह्न है। कंधे हृष्ट-पुष्ट हैं। भुजाएँ लम्बी, बहुत ही सुन्दर एवं चमकीली हैं। हाथोंकी अँगुलियोंमें अँगूठी पहने हुए हैं। हाथोंमें कड़े हैं। ग्रीवा ऊँची, ठोढी रमणीय तथा होठ लाल चमक रहे हैं, दाँतोंकी पंक्ति मानों हीरोंकी पंक्ति हो। नासिका चमक रही है, कानोंमें मकराकृत कुण्डल सुशोभित हो रहा है, गाल चमक रहे हैं। भगवान्‌के नेत्र गुलाबके पुष्पकी तरह खिले हुए हैं, अद्भुत प्रकाश है। ज्ञानके सागर हैं, नेत्रोंमें प्रेम भरा हुआ है। आनन्दकी वर्षा कर रहे हैं। प्रभु सबको समानभावसे देख रहे हैं। प्रभु आकर्षण कर रहे हैं, अद्भुत प्रेम और शान्ति भरी हुई है। भृकुटी बड़ी सुन्दर, मस्तकपर श्रीधरी चंदन है। केश छल्लेदार चमक रहे हैं। मस्तकपर स्वर्णजटित मुकुट है। प्रभो! आपका यह दर्शन अलौकिक है। आपका स्पर्श भी अलौकिक है, छूनेसे सारे शरीरमें रोमांच होने लग जाता है। वाणी गद्गद हो जाती है, दिव्य गन्ध आ रही है। मानो नासिकाके द्वारा अद्भुत पान कर रहा हूँ। आपका कैसा प्रकाश है, प्रकाश भी इसके

सामने फीका पड़ गया है। आपका स्वरूप दिव्य है। आपकी वाणी मधुर है। आप बोलते हैं, उससे मनुष्य मुग्ध हो जाता है। आप जादू कर देते हैं। पशु-पक्षी भी आपके स्वरूपको देखकर मुग्ध हो जाते हैं। आप दयाके सागर हैं। आपके समान कोई नहीं है। आपके नेत्रोंसे नेत्र मिलाता हूँ तो मानो शुद्ध प्रकाश आपसे निकलकर मुझमें प्रवेश कर रहा है। मेरे सारे शरीरमें दिव्यता आ जाती है। हे प्रभो! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि जैसे आप बाहर विराजमान हो रहे हैं, उसी तरह मेरे हृदयमें भी विराजमान होइये। इतना कहते ही भगवान् हृदयमें प्रवेश कर गये। वहाँ मैं भगवान्‌को हवा कर रहा हूँ, चारों ओर भक्तलोग भगवान्‌की स्तुति गा रहे हैं। गोपियाँ, अम्बरीष, ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, हनुमान्‌जी, काकभुशुण्डिजी आदि, शंकर भगवान् भी स्तुति गा रहे हैं। आपका अद्भुत स्वरूप है। आप हमारे हृदयकमलमें विराजमान हैं, हम आपकी स्तुति गा रहे हैं, मुग्ध हो रहे हैं। बाहरमें भी भगवान् भीतर भी भगवान् दीख रहे हैं। जिस प्रकार प्रवीरको रथपर और वृक्षसे बँधे हुए दोनों जगह भगवान् दीखते थे। इतना ही अन्तर है कि उनको नेत्रोंसे दीखते थे और मुझे मनसे दीख रहे हैं। प्रभो! आप अनन्यभक्तिसे दर्शन देते हैं, मेरेमें तो उसकी कमी है, उसकी पूर्ति भी आप ही करेंगे। ध्यानावस्थामें दर्शन देना भी तो आपकी कृपाका ही फल है। अहा! एक आनन्दके सिवाय दूसरी वस्तु नहीं है। यह आनन्द भगवान्‌का निराकार स्वरूप है। देखो कैसी प्रसन्नता हो रही है मानो शान्ति आनन्दकी बाढ़ आ गयी हो। वे ही विज्ञानानन्दघन परमात्मा रामरूपमें प्रकट हुए थे। सफेद और नीला रंग मिला दिया जाय उसी तरहका आपका रंग है, मधुर-मधुर दुर्वाके

अग्रभागकी हरियाली-सी है। कितनी प्रसन्नता, शान्ति और आनन्द है। इस समय क्या विक्षेप आ सकता है। यहाँ तो आनन्द-ही-आनन्द है। श्रद्धा-प्रेम होनेसे प्रत्यक्ष नेत्रोंसे दीखने लग जाते हैं। वह प्रेममय बन जाता है। पापोंसे शुद्ध होकर शरीर दिव्य बन जाता है। सारे शरीरमें दया-प्रेमका प्रादुर्भाव हो जाता है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(गीता १२। १३)

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहङ्कारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है।

ये गुण उसमें आ जाते हैं। भगवान्‌के स्वरूपको हर समय देखते रहें। सब समय उन्हें साथमें ही रखें, प्रभु तो प्रेमके भण्डार हैं। इस प्रकार देखते हुए हमें सारे काम करने चाहिये। काममें हर्ज भले ही हो, प्रभुके ध्यानमें कमी नहीं होनी चाहिये।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

सुखी होनेका रहस्य

स्वयं एक परमात्मा ही अनेक रूपमें प्रकट हो रहे हैं। कोई भी हमें मिले, दीखे तो समझना चाहिये कि परमात्मा ही मिल गये। इस प्रकार हमें सर्वत्र भगवद्बुद्धि करनी चाहिये।

वर्तमानमें जो सांसारिक सुख हमें प्राप्त है उसे त्यागनेसे असली सुख मिल सकता है। जो मनुष्य अपने सुखके लिये दूसरेके दुःखकी परवाह नहीं करता, उसे असली सुख तो मिल ही नहीं सकता, सांसारिक सुख भी नहीं मिलता। उदाहरण वर्तमान युद्धका है, सभी सुखी होना चाहते हैं। जर्मनी चाहता है हम सुखी हों, दुनिया चाहे दुःखी हो, जापान यही चाहता है। इसी उद्देश्यसे एक-दूसरेके सुखको छीन रहे हैं। नतीजा क्या होता है सभी दुःखी होते हैं। आप मेरा अनिष्ट करना चाहेंगे तो मेरे मनमें आयेगा कि मैं आपका अनिष्ट करूँ। आपके द्वारा मेरा अनिष्ट होगा, मेरे द्वारा आपका; चाहते थे दोनों सुख, मिलता है दोनोंको दुःख। यह मार्ग सुखका नहीं है। मैं पचास आदमियोंको दुःख देना चाहूँगा तो वे भी मेरा अनिष्ट करना चाहेंगे। परस्परमें सबका ही अनिष्ट होगा, यह सुखका मार्ग नहीं है। अपने सुखके लिये हम दूसरेको दुःख देना चाहेंगे, इस वृत्तिको लेकर हम तदनुसार प्रयास करेंगे तो दोनोंका ही पतन होगा, दोनों ही गिरेंगे। बुद्धिमान् मनुष्यको यह समझना चाहिये कि हमें चाहे कष्ट ही हो इन्हें सुख हो। हमारे पास रुपये हैं या सम्पत्ति है, उस चीजके द्वारा हम सुख भोग रहे हैं उसका त्याग करें, दूसरोंको सुख पहुँचावें। मनसे दूसरोंका हित-चिन्तन

प्रवचन-तिथि—चैत्र कृष्ण ३०, संवत् १९९८, प्रात:काल, सोमवार, गोरखपुर।

करें। हम दूसरोंको सुख पहुँचायेंगे तो उनके मनमें भी यही भाव होगा, सब हमें सुख पहुँचानेकी चेष्टा करेंगे, यह तो लौकिक सुखकी बात है। इस सुखको भी हम त्याग दें। हमारा यह उद्देश्य न हो कि हम इसलिये सेवा करें कि बदलेमें ये हमारी सेवा करेंगे तो हमें स्वर्ग मिलेगा।

हम उसकी भी इच्छा न रखें तो किसके लिये सेवा करें? ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिये। इस प्रकार करनेसे हमारा अन्त:करण शुद्ध होगा, हमें ईश्वरकी प्राप्ति होगी और हम यह भी उद्देश्य न रखें कि हमें इस बातकी भी इच्छा नहीं है, क्योंकि यह तो पारमार्थिक स्वार्थ हुआ। इसकी भी इच्छा न रखकर कर्तव्य-बुद्धिसे करते रहें, यह काम अच्छा है, हम मनुष्य हैं मनुष्यको यह करना चाहिये। यह करना हमारा कर्तव्य है। न परमात्माकी प्राप्ति चाहते हैं न मुक्ति; तो क्या होगा? हम उस कोटिमें पहुँच जायँगे, हमारी उस क्रियासे हमारे उद्धारकी तो बात ही क्या है, हमारा उद्धार तो हो चुका। वास्तवमें जिनका उद्धार हो चुका है उनकी ही ऐसी चेष्टा होती है। उनके दर्शन, भाषणसे लोगोंका उद्धार होता रहता है। ऐसे पुरुषके द्वारा लोगोंका कल्याण होता है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

(गीता ३। २१-२२)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है,

समस्त मनुष्यसमुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है। हे अर्जुन! मुझे इन तीनों लोकोंमें न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करनेयोग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्ममें ही बरतता हूँ।

इसी प्रकार उन महापुरुषोंके कर्म आदर्श होते हैं और उनसे दुनियाका कल्याण होता ही रहता है। यदि ऐसा पुरुष परमात्माकी दयासे मैं बन जाऊँ, मेरे जीते हुए दो-चार आदमियोंका ही कल्याण हुआ और मैं मर गया। मैं जो कुछ बता जाऊँ कि ईश्वरकी प्राप्तिका यह उपाय है। वह मेरी बात जबतक सृष्टिमें कायम रहेगी, तबतक जगत्का कल्याण उसके पालनसे होता रहेगा।

आज युधिष्ठिर नहीं हैं पर उनकी शिक्षा, आदर्शसे लोगोंको लाभ होता है। जिस देशमें वे रहते थे उस देशकी प्रजा सुखी, धार्मिक एवं सत्यवादी होती थी। धन्य हैं युधिष्ठिर, उनकी कथाको याद करके आज कितना जोश आता है। उन्होंने जो उपदेश दिया, उसे हम आज पढ़ते हैं तो कितना उत्तम भाव हृदयमें पैदा होता है।

भीमको उपदेश देते हैं कि हे भीम! हमारे भाई दुर्योधनको छुड़ाना चाहिये। इस समय कटु वचन सुनानेका समय नहीं है। ये तुम्हारी शरण हैं, यह वह मौका नहीं। गन्धर्वलोग दुर्योधनको बाँधकर ले जा रहे हैं, तुम्हें छुड़ाना चाहिये। कितना ऊँचे दर्जेका उपदेश है। युधिष्ठिर आज नहीं हैं पर उनके इस उपदेशका पालन करनेसे उद्धार हो सकता है। वे तो उद्धार स्वरूप ही थे। उनका कथन, शरीरकी क्रिया लोगोंका उद्धार करनेवाली है। जबतक संसारमें युधिष्ठिरका नाम है, उनके गुणोंकी ख्याति है—

तबतक लोग उनसे लाभ उठाते ही रहेंगे। आज तुलसीदासजीका शरीर नहीं है, किन्तु उनके उपदेश तुलसीकृत रामायणसे कितना लाभ होता है। लाखों लोगोंको लाभ होता है। रामायण क्या है? तुलसीदासजीका ही तो उपदेश है। जबतक वे जीवित रहे, तबतक सम्भवतः बहुत लोगोंका उपकार नहीं हुआ होगा, पर आज लाखों आदमियोंका उपकार हो रहा है। अच्छे पुरुष जब संसारमें नहीं रहते, उनका उपदेश जबतक कायम रहता है, लोगोंका उद्धार होता रहता है।

जबतक यह शरीर मृत्युके मुखमें नहीं जाय, तबतक इससे जो काम लेना हो ले लेना चाहिये। जो संसारमें अपने स्वार्थके लिये दूसरोंका अनिष्ट करनेवाले हैं, वे उन पुरुषोंसे अच्छे हैं जो कृतघ्न हैं। कृतघ्न उसे कहते हैं जो उपकार करनेपर भी अनिष्ट करे। उनसे वे श्रेष्ठ हैं जो आसुरी स्वभाव वाले हैं। उनसे वे श्रेष्ठ हैं जो सकामभावसे यज्ञ, दान, तप आदि करते हैं। उनसे वे श्रेष्ठ हैं जो स्वर्गकी कामना रखकर यज्ञ, दान आदि कर्म करते हैं। उनसे वे श्रेष्ठ हैं जो आत्माकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥

(गीता ५। ११)

कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीरद्वारा भी आसक्तिको त्याग कर अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं।

योगी मन, वाणी और शरीरसे अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म करता है, उनसे वह श्रेष्ठ है जो भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करता

है। उनसे भी वह श्रेष्ठ है जो भगवान्‌की कठपुतली बन जाता है। भगवान् उससे काम लेते हैं। जैसे भगवान् नचाते हैं वैसे ही वह नाचता है। भगवान्‌की प्राप्तिके लिये, भगवान्‌के दर्शनोंके लिये जो कर्म करता है उससे वह श्रेष्ठ है, जो भगवान्‌की कठपुतली बन जाता है। वह उद्धाररूप हो गया। भगवान्‌ने उसे यन्त्र बना लिया, भगवान् उसे हथियार बनाकर दुनियाका कल्याण करते हैं। हमारा तन, मन, धन—सब भगवान्‌के अर्पण हो जाय। भगवान् उसे काममें लावें। जगत् ही भगवान्‌का स्वरूप है। इसलिये कोई मिले तो मानो नारायणसे मिल रहे हैं। पशु मिले तो समझे भगवान् मिले हैं। वास्तवमें भगवान् ही हैं। साधन अवस्थामें तो भावसे हैं, सिद्धावस्थामें प्रत्यक्ष भगवान् हैं। इस प्रकार क्रिया होने लगे तो उसके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। लोभी आदमीको जितना धन मिलता है उतनी ही अधिक प्रसन्नता होती है। इसी प्रकार संसारको भगवान्‌के रूपमें दर्शन कर-करके साधकके प्रसन्नता बढ़ती रहती है।

हमलोगोंको उच्चकोटिका ध्येय रखना चाहिये। सबसे ऊँची बात है लौकिक-सुखका त्याग, सबको सुख पहुँचानेका परिणाम यह हुआ कि हम इतने अनन्त आनन्दमें स्थित हो गये, जिसकी कोई सीमा नहीं। उस सुखको वाणी बता नहीं सकती।

ऐसी स्थिति त्यागसे होती है। यह संसार एक प्रकारकी खेती है। हम सुखकी खेती करेंगे तो सुख पैदा होगा। एक मुट्ठी गेहूँ बोनेसे हजारों मुट्ठी हो जाते हैं। गेहूँको धूलमें मिलाते हैं, इसी प्रकार हमें सुखकी खेती करनी चाहिये, हम सुखको मिट्टीमें मिला देंगे तो उसका फल सुख ही लगेगा। गेहूँका फल गेहूँ ही होगा। जैसा बीज होगा उसीके अनुसार फल लगेगा। सुखको

मिट्टीमें मिलाना क्या है? सुखका साधन शरीर है। इसे हम लोगोंकी सेवाके लिये अर्पण कर दें। इसका क्या परिणाम होगा? वह अनन्त होकर निकलेगा। फिर उसे भी मिट्टीमें मिला देंगे तो वह बढ़ता ही जायगा। यदि आप सुख चाहते हैं तो उसका तरीका यही है कि दूसरोंको सुख दें; यदि दु:ख चाहते हैं तो दूसरोंको दु:ख दें।

जो सबको संसारमें अभय देकर विचरता है, उसे संसारमें कोई दु:ख देनेवाला नहीं रहता। उसके निकट रहनेवाला भी दूसरे किसीको कष्ट नहीं पहुँचा सकता।

एक सत्यवादी पुरुषके सामने असत्य बोलनेमें दूसरेको हिचकिचाहट पैदा होती है।

जो मनुष्य किसीकी हिंसा नहीं करता उसके लिये बताया जाता है कि उसके आसपासमें वैरी भी परस्परमें वैरका त्याग कर बैठते हैं। दूर जाकर चाहे सिर ही फोड़े, उसके निकटकी यह बात है। जो सबको सुख पहुँचाता है उसका अलौकिक प्रभाव पड़ता है। भगवान् कहते हैं—

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।

(गीता १२। ४)

वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

तुलसीदासजी कहते हैं—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

जिसकी आत्मामें परहित वास करता है, उसके लिये कोई भी बात असम्भव नहीं है। वह दूसरोंका कल्याण कर सकता है।

तुलसीदासजीने सिद्धान्त बना दिया—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

हे भाई! दूसरेकी आत्माको सुख पहुँचानेके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है तथा दूसरेको दुःख पहुँचानेके समान कोई नीचता नहीं है। थोड़े शब्दोंमें कितना भाव है।

भाई हनुमान कई बार कहता है कि एकान्तमें जाकर भजन-ध्यान करूँ, प्रत्यक्षमें एकान्तमें आनन्द मिलता है। लोगोंके भीतर रहकर सेवा करनेसे खटपट रहती है, चंचलता रहती है। जितना परोपकारका काम है—पुस्तकें तैयार करना, सेवा करना। देखनेमें तो प्रत्यक्षमें भजन-ध्यानमें ही आनन्द मिलता है, फिर भी भाईजी एकान्तमें न जाकर सेवाका काम करते ही हैं। मैं भी आग्रह करता हूँ यदि सेवाका काम खराब हो तो मैं क्यों आग्रह करूँगा। यह बड़ा अच्छा मार्ग है। हर एक प्रकारसे दूसरोंको सुख पहुँचावे।

जैसे एक स्त्री अपने बाल-बच्चोंका प्रेमसे पालन करती है, उससे अधिक प्रेमसे जेठानी, देवरानीके बाल-बच्चोंका पालन करे तो वह संसारमें देवी है। उसे लोग आदरसे देखते हैं।

सारी दुनिया अपने लिये धन इकट्ठा करती है, किन्तु लोग तो उसकी ओर देखते हैं जो दूसरोंको सुख पहुँचानेके लिये धन खर्च करते हैं। प्रत्यक्ष आप करके देख लीजिये। शास्त्रोंकी बात है ही, फिर भी आपकी प्रवृत्ति नहीं होती तो मूर्खता है।

जो मनुष्य सुख चाहता है उसे सुख देनेका काम करना चाहिये। नरक नहीं चाहते हैं पर काम करते हैं नरक जानेका।

यदि वास्तवमें आप सुख चाहें तो यही बात है कि आप अपने सुखको तिलाञ्जलि देकर लोगोंको सुख पहुँचायें। संसारके लिये अपना सुख अर्पण कर दें। आपके पास जो कुछ सामग्री है, सबको दुनियाके हितके लिये अर्पण कर दें, आप इसके लिये

उतारू हो जायँ। आपकी काया-पलट हो सकती है। आगे जाकर आप इसका रहस्य समझेंगे। जो थोड़ा भी यह समझेगा वह इस काममें लगेगा। तभी आपकी श्रद्धा समझी जायगी। नहीं तो जो जैसा समझता है करता ही है। सब दुःखी हो रहे हैं। बेचारे भोले हैं। समझते हैं सुख मिलेगा, पर पाते हैं दुःख। शास्त्र, महात्मा आदेश दे सकते हैं और क्या करें! परमात्मा भी प्रेरणा कर सकता है।

यह बात समझकर हमें इस मार्गको तय करना है। यही अपना कर्तव्य है। परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग तय करना है। जितना जल्दी करेंगे उतनी ही जल्दी हम परमात्माको प्राप्त होंगे।

नारायण!　　नारायण!!　　नारायण!!!

कामचोरको भगवान् भी नहीं चाहते

होशियार, जानकार, परिश्रमी और ईमानदार आदमीकी सब जगह आवश्यकता है। शक्ति जितनी हो उतना काम करनेके लिये हर समय तैयार रहें। मजदूरमें बुद्धि कम है, पर खटनेके लिये तैयार है, उसे मजदूरी मिलती है। परिश्रमी आदमी भूखा नहीं रह सकता। जो आलसी है वह भले ही कष्ट पाये पर जो मजदूरी करनेको तैयार है वह भूखा नहीं रह सकता। केवल कामचोर व्यक्ति ही भूखे रह सकते हैं। परिश्रम भी कैसा? खूब काम ले। मैं पाँच मिनट भी व्यर्थ नहीं बिताता। हमारी मृत्यु नींद कम लेनेके कारण भले ही हो। छः घंटे सोनेके रखकर अठारह घंटे काम ले। स्वार्थ या परमार्थका कुछ तो काम करते रहना चाहिये। भजन करे, खूब सेवा करे, वह भी नहीं हो तो रुपये कमानेका काम ही करे।

मेरे पास सब तरहके नमूने हैं। ध्यानके विषयमें गणपतरायजीका नमूना है। परिश्रम किस तरह करे वासुदेवको देख लो। परिश्रमी आदमियोंकी सब जगह माँग है। श्रीभाईजीके पास गोस्वामीजी बड़े परिश्रमी हैं। दुलीचन्दजी हैं। गोस्वामीजीको २५० रुपये महीना देते हैं। वह भी मुझे कम मालूम देता है।

घीकी दूकानमें रामजीदासजीको देखो। बूढ़े आदमी होकर इतना परिश्रम करते हैं। मैं तो अपना उदाहरण भी दे देता हूँ।

परिश्रम करनेवालेके सब ग्राहक हैं। कामचोरको भगवान् भी नहीं चाहते। भगवान्का नाम कामचोरबन्धु नहीं है। भगवान् अकर्मण्य आदमीके साथी नहीं है। दीनबन्धु, दीनदयाल उनके

प्रवचन-दिनांक १७-३-१९४२, गोरखपुर।

नाम हैं; अकर्मण्यदयालु नहीं। हम अपनी आत्माका कल्याण नहीं कर सके इसमें एक ही कमी है, साधनमें तत्परता नहीं है। यह दोष क्यों है? श्रद्धाकी कमी है। वह कमी क्यों है? मूर्खता—भगवान्‌ने यही बात तो सिद्ध की।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

(गीता ९। ३)

हे परन्तप! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं।

इस धर्ममें जिनकी श्रद्धा नहीं है, वे मुझे न पाकर मृत्युरूप सागरमें भ्रमण करते हैं। धर्मके विशेषण दिये—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

(गीता ९। २)

किसी भी पुस्तकमें आपको एक श्लोकमें इतनी प्रशंसा नहीं मिलेगी। क्या कहा? मैं जो तुमको कहूँगा वह राजविद्या, परम गोपनीय, बड़ी पवित्र है और बहुत ही उत्तम है। एक-एक चरणमें दो, दो बात कही। प्रत्यक्ष फल देनेवाली, धर्ममय और अविनाशी है और करनेमें बड़ी सुगम है। फिर सब जीव इसमें क्यों नहीं लग जाते? श्रद्धा नहीं है। वे संसारमें जन्मते-मरते हैं, जितनी कार्यकी तत्परता है, उतनी ही सफलता है। अवसर आपके हाथमें है। भगवान्‌के वचन हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि

अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

भगवान् अपने अतिथि बनकर भोजन करनेको तैयार हैं। मूर्ख हो, पापी हो—सबके लिये उपाय बताया है। भगवान्‌का सिद्धान्त है कराकर देना। मुफ्तमें नहीं देते, आलसी नहीं बनाते। पापी या मूर्ख हो तो हर्ज नहीं है, कामचोरको धक्का देते हैं। कामचोर महात्माके पास जाय तो वह भी धक्का देगा, दुकानदारके पास जाय तो वह भी धक्का ही देगा।

जो परिश्रमी व्यक्ति हैं उनकी हमें आवश्यकता है, चाहे जो वेतन ले उन्हें हम रखना चाहते हैं। कोई भगवान्‌की प्राप्तिके लिये रहे तो वह तो हमारे हाथकी चीज नहीं है, परन्तु उसे सेवासे भगवान्‌की प्राप्ति हो ही जायगी। वह चाहेगा तभी साधनमें उसकी तत्परता होगी।

संसारमें हमें परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो रही है, उसमें एक ही कारण है कि हम अपनी शक्तिके अनुसार साधन नहीं करते। सेवा और भजनमें बुद्धिका क्या काम है। मूर्ख-से-मूर्ख, पापी-से-पापी भी कर सकता है। खूब उत्साह रखे, दुःखी आदमीकी सेवा मिल जाय तो अपने इतना उत्साह होना चाहिये मानो भगवान् ही मिल गये। भगवान्‌के मिलनेपर जो उत्साह और प्रसन्नता होती है उससे भी अधिक उत्साह और प्रसन्नता होनी चाहिये। फिर सेवा मिलनेपर वही नारायणके रूपमें परिणत हो जायगा।

हर एक मनुष्यको चाहिये कि काम निकाले, काम खोजे। यहाँपर कोई काम निकालना चाहे तो सैकड़ों कापियाँ लेखोंकी पड़ी हैं उनसे लेख बनावे। प्रेसकी चीजें हैं उनकी लिस्ट बनावे, इतना

काम पड़ा है। संसारमें उत्साह और प्रेमकी आवश्यकता है। इसके कारण ही हम परमात्माकी प्राप्तिकी ओर अग्रसर नहीं हो रहे हैं।

मरनेकी तैयारी है, समय नहीं है। भगवान् कहते हैं मुझे याद कर लो।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

मूर्ख हो, पापी हो—चाहे कैसा ही हो भगवान्‌को याद कर ले। सदाचार, ईश्वरभक्ति और सद्गुण परमात्माकी प्राप्तिमें बहुत सहायक हैं। हम चेष्टा करें तो सारी पृथ्वीमें प्रचार कर सकते हैं। कमी किस बात की है? प्रचारक नहीं हैं। रुपयोंकी कमी नहीं है, पुस्तक छापनेके लिये मशीनें बहुत हैं, और भी मँगा सकते हैं; कमी है—प्रचारकोंकी, परिश्रम करनेवाला, जीवन लगानेवाला चाहिये। चारों ओर लोग दुःखी हो रहे हैं, किस बातकी कमी है? स्वार्थ त्याग कर परिश्रम करनेवालोंकी कमी है। ये दो बातें आत्माके कल्याणके लिये बहुत सहायक हैं—सेवा और भक्ति।

कलियुग हो चाहे उसका बाप हो, ये दो हों तो कल्याण हो ही जायगा। इन दोनोंके लिये तुल जाय कल्याण हो ही जायगा। खूब कटिबद्ध होकर रहना चाहिये, प्राण चले जायँ, पर काम सिद्ध हुए बिना छोड़े नहीं।

चिड़ियाका उदाहरण सामने रखे। चिड़ियाने अण्डा दे दिया था, समुद्र बहा कर ले गया, उसने समुद्रको सुखानेका निश्चय कर लिया। आखिर अण्डा वापस ले ही लिया। एक चिड़ियाको

सहायता मिल गयी तो हमें क्या सहायता नहीं मिलेगी। भगवान् सहायता देनेवाले हैं, महात्मा सहायता देनेवाले हैं, हमारे आलस्यके कारण विलम्ब हो रहा है।

दो ही कामोंमें अपना समय बितावें। एक तो कोई आवे उसकी सेवा करें और भजन-ध्यान करें। सबको भगवान् समझें, वाणीसे जप करें, मनसे ध्यान करें। तीन चीज साथ ही चले, फिर परमात्माकी प्राप्तिमें क्या विलम्ब है।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा दूसरोंको दें, सबसे हँसकर बोलें, सेवा मिल गयी तो मानो भगवान् ही मिल गये। धन लोगोंकी सेवामें लगायें।

माता-बहनोंको खूब परिश्रम करना चाहिये। सेवा और भजन-ध्यानमें तुल जाओ। फिर भगवान् नहीं मिलें तो हमारा कान पकड़ो। फिजूल-खर्चको हटाओ। घर फूँक तमाशा मत करो। फिजूल-खर्च नहीं करना चाहिये। समय असली काममें लगाना चाहिये। गहना, रुपये तो नाश होनेवाले हैं, सेवा असली धन है। इसे चोर नहीं ले जा सकते। डाकू नहीं ले जा सकते, वह चीज तो आपके साथ ही जायगी। सरकार युद्ध-ऋणके लिये पाँच-पाँच हजार रुपये माँगती है, भजन, सेवाको कोई नहीं ले सकता। चोर आया कहा ले लो, भजन, सेवा है, तुम भी करो। सरकारसे कह दे कि ले लो, युद्ध-ऋण दे दो। सेवा करते हैं आप भी करें, कोई पास नहीं आता। घरमें आग लगी सब जल गया, सेवा और भजनको तो वह भी नहीं जला सकी। दान करनेसे यह बढ़ता है, उसे कोई नहीं ले सकता। यह बात स्त्रियोंके समझमें आ जाय तो सब स्त्रियाँ धनी बन जायँ। यह असली धन है।

कबिरा सब जग निर्धना धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये जाके राम नाम धन होय॥

शरीरसे खूब कसकर काम लेना चाहिये। यदि कहे कसकर काम लेनेसे यह मर जायगा, इस प्रकार मरनेमें भी कल्याण है। गीतामें कहा है—**स्वधर्मे निधनं श्रेयः।**

प्राण देनेपर भी भगवान् मिलें तो ले लो, यह सौदा सस्ता है। प्राण तो जानेवाले हैं। चना चबाकर रहकर भी अपना काम सिद्ध हो तो कर लो। परन्तु लोगोंकी तो विपरीत बुद्धि हो गयी। असली चीज धर्मका पालन करना ही है। अपने शास्त्रोंमें सारी चीजोंका धर्मसे ही सम्बन्ध है। हमारा सारा जीवन धर्ममय था, जिसको आज नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। हमारा जीवन शास्त्रके अनुकूल होता तो विलम्ब क्यों होता? आज झूठा लेना, झूठा देना—सब झूठा ही झूठा हो रहा है—व्यापार करते हैं पद-पदमें झूठके लिये कमर कसकर तैयार हैं कि रुपये मिलें तो चाहे जितना पाप करा लो। झूठा-बीजक बनानेको तैयार हैं, सफेदपर काला करनेको तैयार हैं, झूठ बोलनेको तैयार हैं। वह समय भी मेरा देखा हुआ है जब बाहर गाँवके लोग आते, उनमें बीस-बीस, चालीस वर्षके रुपये बाकी रहते थे। आजकी तरह उस समय ऋण कालातीत नहीं होते थे।

पिताजी कहते आठ वर्षसे तेरे खातेमें बाकी है या तो दे दे, नहीं तो कोयला फेर दे। वह कहता मैं यह कैसे कर दूँ। कहते आधा दे दे, वह कहता पूरा देना है, आधा क्यों दूँ, पूरा दूँगा। बहीमें झूठा लिखना गौके ऊपर छूरी चलानेके समान पाप समझा जाता था। यह बात तीस-चालीस वर्ष पहले थी। कोई आदमी यह नहीं कह सकता था कि तुमने झूठा लिख दिया है। यह बात भी कोई नहीं कह सकता था कि तुम ईमानसे कह दो। आज दोनों बात नहीं है।

बिल्कुल सच्ची बात होती तो भी सौगन्ध नहीं खाते। आज यह बात नहीं है। सौमें निन्यानबे बहियाँ झूठी लिखी जाती हैं। बहीमें

गलत लिखना भी पाप होता है, यह बात ही आज नहीं है।

आज न भगवान्‌का भय है, न लोकका भय है, न सरकारका भय है। सब झूठा लेना, झूठा देना, लेन-देन ही नहीं झूठा जमाखर्च भी करते हैं। यह कोई आत्माके कल्याणका रास्ता है क्या? ऐसे लोग आत्माके कल्याणके लायक ही नहीं हैं। वह बात है एक वेश्या थी, अमावस्याके दिन किसी पण्डितको भोजन करा दिया जाय तो उसे लेनेके लिये स्वर्गसे विमान आता है ऐसा उसने सुन रखा था। एक भाँड मिला। पूछा आप पण्डित हैं क्या? उसने कहा—हाँ। तू कौन है? वेश्याने कहा—मैं क्षत्राणी हूँ। भोजनका निमंत्रण दे दिया, खीर बनी खूब खायी, दक्षिणा लेकर विदा होने लगा। वेश्या ऊपर देखने लगी। भाँडने कहा—क्षत्राणीजी ऊपर क्या देखती हो? वेश्याने कहा—विमान देखती हूँ, आप पण्डित हैं न। भाँडने कहा—

तू खत्राणी मै पांडियो तू वेश्या मै भाँड।
तेरे जिमाये मेरे जीमे पत्थर पड़सी राँड॥

मुझे तो यह दीखता है कि मेरा सिद्धान्त मेरे साथ ही जायगा। मैं तो भजन-ध्यानसे भी बढ़कर उस बातको समझता हूँ कि कोई आदमी निष्काम कर्मयोग करके दिखावे। फल, आसक्ति त्याग कर कर्म करे। जिसके लिये भगवान् कहते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २। ४७)

तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।

शरणका रहस्य

प्रश्न— सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर—भगवान्ने कहा है कि मैं तुम्हारा हूँ इस प्रकार कोई वचनमात्रसे भी कहता है, उसको मैं शरणमें ले लेता हूँ। उसका त्याग नहीं करता।

प्रश्न—वचनमात्रसे भी शरण हो सकता है?

उत्तर—हाँ! हो सकता है। भगवान्ने कहा ही है। इस बातपर श्रद्धा कर ले कि यह भगवान्का वचन है। इस न्यायसे वह भगवान्की शरण हो गया। यह मान लिया फिर भी यदि वह कहे कि मैं अभय नहीं हुआ, परन्तु भगवान् तो कहते हैं कि मैं अभय कर देता हूँ, फिर उसपर निश्चिन्त हो जाय, उनके वचनोंपर बड़ा भारी विश्वास रखे। मान ले कि भगवान्ने शरण ले लिया है। यह भगवान्के वचन हैं, सच्ची बात है। एक बार भी अपने याचना कर ली तो उन्होंने शरणमें ले ही लिया, ऐसा समझकर निर्भय हो जाय। यदि कहो अभय तो नहीं हुए। यह मान ले कि वे अभय कर देंगे। यदि कहो कि मैंने तो कह दिया कि मैं आपका हूँ, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। सरकारने सूचना प्रकाशित की कि कोई सिपाही भर्ती होना चाहे तो हो सकता है। हम भर्ती होना चाहें तो सरकार क्या कह सकती है कि हम भर्ती नहीं करेंगे। भर्ती हो गये, फिर उन्होंने कोई काम बताया। फिर क्या कोई काम ऐसा है जो उनके राज्यमें न कर सकें। जबतक वह पुलिसका

सिपाही नहीं था, तबतक उसकी मान्यता दूसरी थी, जब भर्ती हो गया तब दूसरी हो गयी। पहले लोग रास्तेमें मल-मूत्र विसर्जन करते थे। उसने पूछा—यहाँ गंदगी क्यों करते हो? तब लोगोंने उसे डाँटा कि हमारी इच्छा, हम चाहे सो करें। अब लोग उससे डरते हैं। पहले वह चोर-डाकूसे डरता था, अब चोर-डाकू उससे डरने लग गये।

ऐसे ही भगवान्‌का भक्त बननेसे अपनेमें निर्भयता आ जानी चाहिये। हम मान लें कि भगवान्‌ने हमें स्वीकार कर लिया। जब हमें भगवान्‌की चपरास (वर्दी) मिल गयी, अब किस चीजका भय है।

किसीने पूछा कि भगवान्‌का काम समझकर कैसे काम किया जा सकता है? अपनेको सेवक समझकर स्वामीका काम करे। वर्तमानमें यह अपनी दूकान है। निष्कामकर्म क्या है? यह समझे यह भगवान्‌की दूकान है, मैं सेवक हूँ। वाणीसे वह भले ही अपनी दूकान कह दे, परन्तु हृदयसे उसे भगवान्‌की दूकान समझे। इस प्रकार साधन करनेसे आगे जाकर निष्कामकर्म हो सकता है।

प्रश्न—एक आदमी कहे कि मैं भगवान्‌के शरण हूँ, किन्तु विहित कर्म नहीं करता तो क्या वह शरण है?

उत्तर—एक व्यक्ति सिपाहीकी नौकरीमें भर्ती हो जाय, फिर घरका काम करने लग जाय। वह भगवान्‌की शरणको समझा ही नहीं। सरकारके नियम सिपाहीको मानने पड़ते हैं। आजतक अपने मनकी शरण है भगवान्‌की नहीं। भगवान्‌की शरण होनेसे तो उनकी आज्ञाके अनुसार ही चलना चाहिये। आज्ञाके अनुसार चलना ही शरण है। केवल शरण कह देनेसे

शरण नहीं हो जाता। शरणागत तो प्रभुके विधानमें प्रसन्न होता है। शरण तो वही समझा जाता है जो प्रभुके आश्रित हो जाय। भगवान् जो कुछ सुख-दुःख भेज दें उसमें प्रसन्न रहे। उनकी आज्ञाका पालन करे। यदि नहीं करते हैं तो वास्तवमें शरणका मतलब ही नहीं समझे। भगवान्ने कहा है—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥

(गीता १८। ५६-५७)

मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परम-पदको प्राप्त हो जाता है। सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके तथा समबुद्धिरूप योगको अवलम्बन करके मेरे परायण और निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो।

यह भाव है कि उनका जैसा कानून है वैसा ही कर्म करे। भगवान्की आज्ञाके अनुसार चलते हैं तो उनकी शरण हैं। भगवान्को याद करना, उनकी आज्ञाके अनुसार चलना, उनके विधानमें संतोष रखना ही उनकी शरण है। यदि आप कहें मैं तुम्हारी शरण हूँ। मैंने कहा पाँच आदमी आये हैं इनको भोजन कराओ। उत्तर मिला यह नहीं हो सकता, वह क्या शरण हुआ। भगवान्ने जो आज्ञा दी है उसका तो पालन नहीं करता और कहता है कि मैं शरण हूँ। वास्तवमें वह शरण नहीं है।

उसकी नीयत यह होनी चाहिये कि मैं भगवान्की शरण

होना चाहता हूँ। ऐसा भाव रखनेपर शनैः-शनैः वह शरण हो जायगा। कोई कमी रह जाय तो छूट भी मिल जायगी या भगवान् उसकी कमीकी ओर न देखकर उसे शरण ले लेंगे। भजनका रास्ता बड़ा अच्छा है। एक भजनके प्रतापसे सब कमी दूर हो सकती है। भजनकी ऐसी सामर्थ्य है कि उसके अन्त:करणको साफ करके सारी त्रुटियोंको दूर कर सकता है। भजनसे ही ध्यान हो सकता है। भगवान्की मूर्ति सामने रखकर उसके नेत्रोंसे नेत्र मिलाकर उसमें चेतनताकी भावना करे। भजनमें विश्वास हो जाय कि भजन करनेसे मेरेमें सदाचार आयेगा तो उसमें सदाचार आने लग जायगा। यदि विश्वास हो कि भजन करनेसे ध्यान होगा तो शनैः-शनैः उसका ध्यान होने लग जायगा। जिस चीजकी वह प्रतीक्षा करेगा, शनैः-शनैः प्राप्त हो जायगी। एक मुट्ठी बीज बो दिया। उसको बतलाया गया दस दिन बाद अंकुर निकलने लग जायगा। वह छः दिनसे ही देखने लग गया। आठ दिन बाद, दस दिन बाद बार-बार देखता है। नहीं निकला तो वह जल सींचता है, पीछे अंकुर आ गया। फिर उसने पूछा—फल कब लगेगा? उसको बताया दो वर्ष बाद आयेगा। वह सींचता है, प्रतीक्षा करता है। दो वर्ष हो गया फल नहीं लगा। अब ढ़ाई वर्ष हो गये, वह बार-बार सींचता ही रहता है, फिर फल-फूल सब आ जाते हैं।

इसी प्रकार भजनको बीज समझ लें, पीछे प्रतीक्षा करें। बीज भजन है, फल भगवान्की प्राप्ति है। फल बीजके अनुसार होगा। बीज भगवान्का नाम हुआ, फल हुआ भगवान्का स्वरूप। बीज लगाकर उसको सींचता रहे, जल सींचना सत्संग है।

सत्संग करनेसे विश्वास बढ़ता रहता है फिर यह समझ ले कि भगवान्‌का भजन करनेसे सद्‌गुण सदाचार स्वतः ही आयेंगे। भगवान्‌का आश्रय ले ले, उनके प्रतापसे सारे सद्‌गुण स्वतः ही आ जायँगे। भगवान्‌के नामजपका आश्रय लेना ही शरणका आरम्भ है। पीछे भजनके प्रतापसे सारी बात स्वतः ही हो जाती है।

व्यवहारमें भी सत्य नहीं आता है, माँ-बापकी सेवा नहीं बनती तो भजन करते रहो। उससे सब स्वतः ही हो जायगा। यह मान लो कि भजनसे दैवी-सम्पदाके सब गुण आ जायँगे। कम आये तो खूब भजन करो। साबुनसे कपड़ा साफ होगा। कम साफ हुआ तो फिर रगड़े, साबुनसे ही साफ होगा। नहीं हुआ तो रगड़ते रहो। सद्‌गुण, सदाचार नहीं आये तो भजन किये जाओ। अन्तःकरणमें यदि अधिक दाग है तो वह ज्यादा रगड़से जायगा। कपड़ा साफ होनेके बाद ही उसपर रंग चढ़ेगा।

निष्कामभावका स्वरूप और उसकी महिमा

जिससे परस्पर प्रेम बढ़ाना हो, स्वार्थ, अहंकार त्यागकर उसके हितमें रत हो जाय—यह सूत्र है। जैसे हरेक भाई अपने हितके लिये रत हैं, वैसे ही जिससे प्रेम बढ़ाना हो उसके हितमें रत हो जाय, किन्तु उसमें स्वार्थ नहीं होना चाहिये।

मेरा कोई स्वार्थ नहीं है ऐसा अहंकारका वचन भी न कहे। यह प्रेम बढ़ानेका उपाय है। एक भाई स्वार्थ त्यागकर दूसरेके हितमें रत है, किन्तु कहता है कि मैं निष्कामभावसे करता हूँ वह भी बाधक है। आप सेवा करके कह दें तो अहंकार आनेसे सब समाप्त है। आप सेवा करें, धन देवें, कह दें तो मिट्टी है। सेवा, उपकार करे तो कहना नहीं चाहिये। अहंकार असली वस्तुको नष्ट कर देता है। दूधको खटाई फाड़ देती है। उत्तम सेवा दूध है, अहंकारका वचन उसमें खटाई है। अहंकारके वचनसे मन फट जाता है। मन फटनेपर प्रेम कैसे रहे? बाधा आ जाती है, सेवा करके गिनावे नहीं। बुरी आदत सबमें होती है। अहंकार करनेवाला अपना नुकसान स्वतः करता है, स्वार्थ-परमार्थ दोनोंकी हानि होती है। उत्तम काम करके कहना मूर्खता है। एकका उपकार किया, दूसरोंसे कहा तो वह भी आधा हो गया।

अभिमानका वचन सहन नहीं होता। किसीके सामने कह देता है तो सब किया कराया व्यर्थ हो जाता है। विश्वामित्रने त्रिशंकुको इन्द्रपद दिलाया। इन्द्रने सत्कार किया, कहा—आपने क्या पुण्य, दान आदि किये, जिसके बलसे आपको मेरा पद मिला। त्रिशंकुने कहा—मैंने यह यज्ञ किया, यह तप किया, यह

किया, वह किया, और क्या किया? याद नहीं। सोचिये, याद नहीं, इन्द्रने कहा—अब आप जाइये। जिह्वापर अग्निका वास होता है, अच्छा करके कह दे तो भस्म—**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति।** नीचे गिरते समय पुकारने लगा। विश्वामित्रने इशारेसे कहा ठहरो—बीचमें ही ठहर गया। मुँहसे लार गिरी, उससे एक नदी बन गयी। उस नदीका नाम कर्मनाशा है। उसमें स्नानसे पुण्य नष्ट हो जाता है। यहाँ यह दिखलाया है कि कोई अच्छा काम करके कह दे तो वह नष्ट हो जाता है।

तप, भजन, ध्यान, सेवा और उपकार मुखसे न कहे। पूछनेपर भी मौन रहकर टाल दे। उपकार करके तो कहना ही नहीं चाहिये।

सेवा करनी चाहिये, कहनी नहीं। सेवा न करनेवालेसे तो करनेवाला अच्छा है। सकामकी अपेक्षा निष्कामकी प्रशंसा की जाती है। स्त्रियाँ विशेष ध्यान दें, उन्हें कहे बिना हजम नहीं होती। दूसरोंको कहनेमें उद्देश्य मान-बड़ाई है।

अपनी बड़ाईके लिये कहनेसे पुण्य क्षय होता है।

निष्कामभावके तो पेड़ ही सूख गये। स्वार्थ प्रविष्ट हो ही जाता है। चारों ओरसे तैयार रहता है। स्वार्थ प्रविष्ट हो गया तो हमारे भावके कलंक लग गया।

निष्कामभावका व्यवहार अमृतके समान है। निष्कामभावसे किया हुआ आचरण अमृत है।

आपसमें निष्कामभावको लेकर जो प्रेम है वह प्रभुके साथ है।

सेवाका फल है प्रेम। अतः प्रेम चाहो तो सबकी सेवा करो। सेवा और उपकारमें भी अन्तर है। सेवामें तो विनय है, अहंकारका

अभाव है। उपकारमें अहंकार है। अतः दूसरेके हित, उपकारमें स्वार्थ, अहंकार त्यागकर रत होना चाहिये। सेवक हो जाय। सेवक होनेपर भी यदि गिना दे तो रुपयेका आठ आना हो जाता है। निष्कामभावमें कलंक लग जाता है, सेवामें भी कलंक लग जाता है। निष्कामभावसे किया तो कहा क्यों! कहते ही सकाम हो जाता है। कहनेसे अहंकार आ गया। सेवा तो हुई, दर्जा घट गया। सेवा की और कह दिया तो उसका महत्त्व घट जाता है और यदि निष्कामभाव जोड़ दिया, उसमें तो कहना कलंक है। निष्कामभाव डुग्गी पीटनेके लिये नहीं है।

हमारा यह प्रेम आधा है। अधिक हो तो भगवान् देखनेके लिये स्वयं आयें, ऐसा प्रेमी देखनेमें नहीं आता। प्रेमास्पद कठिन-से-कठिन काम भी दे दे तो आनन्द मानता है। हमलोगोंमेंसे कोई बुराई करे तो सफाई न दे, सहन कर ले। सुनकर रोमांच प्रसन्नता हो, ऐसा प्रेमी मिलना कठिन है। ऐसा प्रसन्न होनेवाला प्रेमी मिल जाय उसको हानि पहुँचानेकी प्रेमास्पद कल्पना भी नहीं कर सकता। यदि प्रेमास्पद कोई ऐसा काम बताये जिसमें वह संकटमें पड़ सकता हो, उस संकटको मुक्तिसे बढ़कर समझे यह प्रेमका नमूना है।

स्वार्थ, अहंकार त्यागकर किसीकी सेवा करो, अवश्य प्रेम होगा। पर ध्यान रहे, ऐसा व्यवहार करके मनमें अहंकार न करे। मनमें दो बात न रखे, उपकार करे अपकार उठा दे। इनका संस्कार रहना ही निष्काममें कलंक है, आपसे उपकार हो गया उसका संस्कार उठा दे। अपकार भी याद है तो निष्कामभाव नहीं है।

दो बात कभी भूलनी नहीं चाहिये। दूसरेके द्वारा किया गया अपना उपकार तथा अपने द्वारा दूसरेका किया हुआ अनिष्ट।

यादसे ही परिशोध होकर कलंक मिट सकता है। दोनोंसे मुक्त होना ही मुक्ति है। एकमें ऋणसे मुक्ति है, एकमें पापसे मुक्ति है। हम आभारी बने रहेंगे।

अपनेसे अपकार हुआ, मनमें पश्चात्ताप होगा तो पापसे मुक्ति मिलेगी। हमारे जन्ममें दो ही हेतु हैं, पाप एवं ऋण। जो निष्काम और उऋण है, वह मुक्त ही है। न पाप करे, न ऋणी रहे। अतः यदि पापकी क्रिया हो जाय और ऋण हो जाय तो आजीवन याद रखे। दो बातें भुलानेसे लाभदायक हैं। अपने द्वारा उपकार किया गया तथा दूसरेके द्वारा अपना अनिष्ट किया गया। चाहे कहो मत, मनमें रखो, तो भी निष्कामभावमें कमी है। मनमें तो है कि अनिष्ट किया, अतः उसे ईश्वर दण्ड देंगे।

ऐसा व्यवहार हो जिसमें स्वार्थ, अहंकार न हो। मान, बड़ाई और प्रतिष्ठाकी गंध बिना अहंकार कहाँ रहेगा? आश्रय बिना यह कहाँ रहेगा? इसे जड़से उखाड़ डालना चाहिये। मनमें जगह ही न दो।

निष्कामभाव ज्ञानमें भी अमृत समान है, भक्तिमें तो है ही। परस्पर प्रेम बढ़ानेका यह अचूक मन्त्र है।

कल्याणके सुगम उपाय

मुक्ति माँगनेवालेसे दर्शन माँगनेवाला उत्तम है, प्रेम माँगनेवाला इससे भी उत्तम है। यदि यह भी न हो तो ऐसा भाव रखो कि हर समय प्रभुकी चर्चा होती रहे।

अभ्यास वैराग्यसे प्रबल उपाय बताया जाता है। इसे करना चाहिये। प्रार्थना बड़ा ही सहज उपाय है। मूर्ख-से-मूर्ख तथा पापी-से-पापी भी उसे कर सकते हैं। एकान्तमें बैठकर उस परमेश्वरके आगे गद्‌गद वाणीसे रोना है—'हे नाथ! मेरा कोई वश नहीं है, यह पापी मन आपको छोड़कर विषयोंकी ओर जा रहा है। हे नाथ! पतिंगेके तरह मेरी दशा हो रही है। हे नाथ! आपके बिना मुझे बचानेवाला कोई नहीं है। यद्यपि मनसे मैं आपकी शरण नहीं हूँ तथापि वाणीसे हूँ। मेरी दशाकी ओर निहारें। हे नाथ! आपका संग पाकर मैं सनाथ होकर भी अनाथकी तरह मारा जा रहा हूँ।' इस प्रकार भगवान्‌के सामने रोना चाहिये। सच्चे हृदयसे रोनेसे भगवान् अवश्य सुनेंगे। मेरा यह निश्चय, विश्वास है। परमेश्वरके सामने हृदय खोलकर रोना चाहिये—'हे नाथ! मैं प्रार्थना करता हूँ कि भविष्यमें मेरे द्वारा कोई पाप नहीं हो।'

नेत्रोंसे किसीकी ओर एक बार खराब दृष्टि हो गयी तो सूर्यका दर्शन करनेसे वह पाप नष्ट हो जायगा।

लाखों काम छोड़कर इस कामको करना उचित है। जब आप एकान्तमें बैठते हैं, तब आपको आलस्य आता है, फिर आपको भगवान्‌का आनन्द कैसे आयेगा। भगवान्‌का आनन्द प्रारम्भमें कुछ कठिन है, परन्तु परिणाममें महान् सुख देनेवाला

प्रवचन-दिनांक—१-१-१९३४।

है। साथमें यह विश्वास रखो कि भगवान्‌का आनन्द नीच-से-नीचको भी प्राप्त हो सकता है। आपको निराशा नहीं होनी चाहिये। मेरेपर विश्वास करके इसके लिये तत्पर हो जाना चाहिये।

ईश्वरका प्यारा बनना चाहते हो तो ईश्वरके अनुकूल बन जाओ। ईश्वरको जो प्रिय हो वह गुण अपनेमें सजाओ।

प्रेमका फल परमात्माकी प्राप्ति है। भगवान्‌के आनेका लक्षण कौन-सा है। प्रेमके पूर्वका लक्षण कैसा होता है। जैसे मछली जलके बिना तड़फड़ाती है। जैसे गोपियाँ वनमें भगवान्‌को व्याकुल होकर ढूँढ़ रही हैं। उनके विरहमें ऐसा व्याकुल हो जाय तब भगवान् पहुँचें।

सच्चे दुःखसे परमात्माके लिये विलाप करें उसी समय भगवान् आ जायँगे। रुक्मिणी जैसे व्याकुल हुई। समयपर भगवान् नहीं पहुँचे तब बहुत व्याकुल हुई, तब भगवान् पहुँचे। जैसे द्रौपदीके चीर उतारनेके समय भगवान् पहुँचे, आवश्यकता समझनेपर ही भगवान् पहुँचते हैं, प्रह्लादके यहाँ बिना बुलाये आये। दुर्वासा आये उस समय भगवान् पहुँचे, बोले भूख लगी है मुझे भोजन दो। एक सागके पत्तेके खानेसे विश्व तृप्त हो गया। जिनके बुलाते ही भगवान् आ जाते हैं, वे धन्य हैं।

जिनकी पुकारसे भगवान् आ जाते हैं, वही भक्ति भक्ति है। भगवान्‌के मिलनेके बाद कैसे लक्षण होते हैं।

उस व्यक्तिको अपने आपका ज्ञान नहीं रहता। वह एकदम अवाक् हो जाता है। उसका यह भाव हो जाता है कि मैं तो महातुच्छ हूँ, क्या भगवान् आ गये। देह-गेहका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। उसके नेत्रोंकी पलक नहीं गिरती, उसके नेत्र डबडबा जाते हैं। प्रेम ही उसके नेत्रोंसे बहने लग जाता है,

मुखारविन्द शान्त हो जाता है। रोमांचमें कटहलकी तरह उसके रोम खड़े हो जाते हैं। वह पत्थरकी मूर्तिकी तरह हो जाता है, उसको कुछ भी होश नहीं रहता। वास्तवमें सच्चा प्रेम हो तो रात बीतनेमें कुछ समय नहीं लगे। हम तो नकली प्रेमसे ही रात निकाल देते हैं। खड्गपुरमें* रात-की-रात निकल जाती। प्रेमीका दर्शन भी पवित्र करनेवाला है।

अपना मित्र सच्ची बात कहता है, अपने मनमें सोच ले, सब प्रकारसे विचार कर ले, फिर उसके लिये कटिबद्ध होकर तत्पर हो जाय।

एक अच्छे पुरुषका सहारा लेना चाहिये। वह कह दे कि सब कुछ त्याग दो तो उसी समय त्याग दे। ऐसे एक पुरुषका आश्रय लेना चाहिये—भयसे, शर्मसे चाहे जैसे लो। अच्छे पुरुष तथा गुरुका वचन नहीं माननेपर पाप लगता है।

आपलोग इतने दिनसे चेष्टा कर रहे हैं फिर विशेष लाभ क्यों नहीं होता है? क्या समयका दोष है, क्या संगका दोष है, क्या वैद्य भी लाभ नहीं बताता है। क्या आप पथ्य नहीं जानते हैं, क्या घरके लोग कुपथ्य दे देते हैं या रोग समझमें नहीं आता? या औषध समझमें नहीं आती? इन सब बातोंपर ध्यान देकर विचार करना चाहिये। इसमें प्रधान कारण अश्रद्धा है। इसके लिये परमेश्वरसे प्रार्थना करे।

मैं यह घोषणा करता हूँ कि गीताका पाठ करनेसे जितना लाभ है उतना कथासे नहीं है। ईश्वरमें कम-से-कम यह श्रद्धा

---

* श्रीगोयन्दकाजी चक्रधरपुरमें रहते थे। उनका सत्संग करनेके लिये कुछ सज्जन रात्रिमें कलकत्तासे खड्गपुर आ जाते जो कि कलकत्ता एवं चक्रधरपुरके मध्यमें है। वहीं श्रीगोयन्दकाजी आ जाते। वहीं स्टेशनपर रातभर सत्संग चलता था तथा प्रात:काल सब अपने-अपने स्थानको लौट जाते।

करनी चाहिये कि ईश्वर दयालु, न्यायकारी, परम सुहृद्, बिना हेतु ही दया करनेवाला एवं अन्तर्यामी है। इतना माननेसे पापकी क्रिया नहीं होती। परलोक माननेसे ही अपने कल्याणके सिवाय दूसरा काम कर ही नहीं सकता। कोई भी काम हो, जब उसमें कल्याणका अंश नहीं होगा, उसे तुरंत दूर फेंक देगा।

महात्मा तो बुद्धिमान् है, वह हमें जो काम बतायेगा, वह करनेलायक ही बतायेगा। ईश्वरमें कैसी श्रद्धा होनी चाहिये। महात्मामें कैसी श्रद्धा होनी चाहिये, इसका उदाहरण देख-देखकर रोमांच होता है।

बहुत प्रभावकी बात

मित्रो! मेरी एक बात आप मान लें। आजसे यह नियम कर लें कि सन्ध्या समयसे करनी है। सन्ध्या समयसे करनेसे कल्याण हो जायगा। इसमें कुछ संदेह नहीं है।

केवल एक सन्ध्यासे ही कल्याण हो जायगा। आदरसे सन्ध्या-गायत्री करो तो कल्याण हो जायगा। परमात्माका ध्यान करता रहे एवं गायत्रीका जप करता जाय तो ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

श्रद्धा, प्रेमसे गायत्रीकी एक माला प्रातः एवं एक माला सन्ध्याके समय की जाय तो दोनों समयमें मिलकर लगभग पौन घंटा लग सकता है।

इस प्रकार मनुष्य चौबीस घंटेमें एक घंटा प्रेमसे बिता दे तो उसका कल्याण होनेमें कोई शंका नहीं है।

बलिवैश्वदेव नित्य किया जाय तो निश्चित ही कल्याण हो जायगा। मुझे यह विश्वास है कि इससे कल्याण हो जायगा। सदा ही गायत्रीकी एक माला, बलिवैश्वदेव आजसे लेकर जीवनपर्यन्त करना चाहिये।

१. नियम नित्य ही करना चाहिये।

२. सन्ध्या सूर्यके उदय एवं अस्तके पूर्व करनी चाहिये।

३. प्रेमसे करनी चाहिये, इससे अपना कल्याण अवश्य ही हो जायगा। इस विश्वासकी यह पहचान है कि विश्वास होनेसे सन्ध्या आदर एवं नियमसे अवश्य ही होगी। इसमें शास्त्र तो प्रमाण हैं ही।

सन्ध्यामें प्रधान है शरीरकी पवित्रता, मार्जन, प्राणायाम, संकल्प एवं सूर्य भगवान्‌को अर्घ्य।

ईशावास्योपनिषद्‌में यह बात आयी है कि हे अग्नि! आप हमें अर्चिमार्गसे ले चलें।

स्त्रियों, बालकोंके लिये चार मंत्रकी सन्ध्या है—

१. अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

इस मन्त्रसे मार्जन करना अर्थात् अपने ऊपर जलका छींटा देना चाहिये।

२. केशवाय नमः स्वाहा, नारायणाय नमः स्वाहा, माधवाय नमः स्वाहा—इन मन्त्रोंसे आचमन करना चाहिये।

३. *हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥*—इस मंत्रसे प्राणायाम करना चाहिये।

४. **एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।**
अनुकम्पय मां देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

इस मन्त्रसे सूर्यभगवान्‌को अर्घ्य देना चाहिये। पढ़े हुए हों तो नित्य गीताके एक अध्यायका पाठ करना चाहिये। प्राण जाते समय यदि गंगाजीका किनारा मिल जाय तो बहुत ही उत्तम है नहीं तो तुलसी, गंगाजलका सेवन करना चाहिये।

शोक छोड़ना हमारे अधीन नहीं होता तो उपदेश व्यर्थ हो जाता।

हर समय प्रसन्न रहें, सौम्यता, ध्यान एवं भगवान्‌की चर्चा हर समय करते रहें। मनमें कभी यह न आने दें कि इस जन्ममें कल्याण नहीं होगा।

कितना ही भारी कष्ट आवे वह प्रभु सँभालेंगे ही। दीर्घसूत्रता त्याग दें। मैं जो कहता हूँ वह आप करके दिखावें तभी उसका महत्त्व है।

अब तो दौड़ो, जल्दी पार हो ऐसा प्रयास करना चाहिये। पीछे जो बीत गया सो बीत गया, अब तो बहुत चेष्टासे लगना चाहिये। जिससे शीघ्र ही बेड़ा पार हो जाय।

सब लोगोंसे प्रार्थना

सन्ध्या-गायत्री समयसे करनेसे ही पूरा लाभ होगा।

जो पुरुष आदरपूर्वक सूर्यकी उपासना करता है, उसके कल्याणमें कोई शंका नहीं है। अग्निकी उपासना बलिवैश्वदेव करना है।

इस दुनियामें सूर्यके समान कोई भी प्रत्यक्ष देवता नहीं है, सूर्यकी उपासना समयसे करनी चाहिये।

महापुरुष जिसे कह दें कि यह मेरा है उसका कल्याण हो गया।

मेरा प्रियतम अत्यन्त प्यारा वही है जो मेरी बातको माने, यानि जो मैं बता दूँ उसके अनुसार चले।

महापुरुषने जिसको अपना लिया वह तो उत्तम है। आप समझ लें काम पूरा हो गया तो हो गया। यदि मान लिया जायगा तो हो जायगा। कठिन मान लिया जायगा तो कठिन रहेगा। यह

बात समझमें आ जाय कि उनकी यह इच्छा है तो उस कामको बिना सोचे करने लग जाय। आगकी खाईंमें कूदना पड़े तो कूद जाय। श्रद्धा ऐसी हो जाय कि इस खाईंमें मरनेसे मुक्ति है। इसमें प्रवेश करनेसे ही मुक्ति है।

ध्यानके समय मन उचाट हो जाता है। बार-बार उठानेकी चेष्टा करता है और दूसरी जगह उठाकर ले जाता है। इसमें मनकी बुरी आदत कारण है एवं पूर्व जन्मका संचितकर्म आकर उठाकर ले जाता है। पापकर्म और पापकर्म करनेकी बुरी आदत तंग करती है। स्वतन्त्र रहकर, सावधान होकर चेष्टा करे तो विजय प्राप्त कर सकता है। इसे जीतनेके लिये ईश्वरका आश्रय लेना चाहिये।

ईश्वरकी प्राप्तिमें चार विघ्न ये हैं—

१. मांसाहार, २. खर्चीला जीवन, ३. विद्याका मद, ४. श्रद्धाका अभाव।

१. मांसाहारी सब जीवोंमें कभी भगवान्‌को व्यापक नहीं देख सकता। मांसलोलुप निर्दयी हो जाता है, इसलिये वह ईश्वरकी दयाका अधिकारी नहीं होता। मांसाहारीका स्वास्थ्य खराब रहता है, जिससे वह भजन नहीं कर सकता। मांसाहारीकी चित्तवृत्तियाँ तामसी रहती हैं, जिससे वह भगवान्‌में नहीं लग सकता। अतएव मांसाहारका सर्वथा त्याग करो।

२. खर्चीला और विलासी जीवन पापका घर है। जो अधिक खर्च करता है और शौकीनीका सामान जुटानेमें लगा रहता है, उसे दिन-रात धनकी चिन्तामें ही जीवन बिताना पड़ता है, कहीं भूले-भटके सत्संग या अच्छे स्थानमें चला जाता है तो वहाँ भी धनकी ही बात सोचता है, अतएव सीधा-सादा जीवन बिताओ

और बहुत ही कम खर्च करो।

३. विद्याका मद मनुष्यको सरल संतोंकी वाणीमें विश्वास नहीं करने देता। वह शास्त्रार्थ और दूसरेकी उक्तियोंके खण्डनमें जीवन बितानेको बाध्य करता है, नम्रतासे किसी भी अच्छी शिक्षाको ग्रहण नहीं करने देता। अतएव विद्याका घमण्ड छोड़कर जीवनको उन्नत बनानेवाली शास्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण करो।

४. श्रद्धाका अभाव मनुष्यको ईश्वरसे विमुख कर देता है। कारण सबसे पहले परमात्मामें विश्वास करनेके लिये शास्त्रवचन और आप्तवाक्यमें श्रद्धा करनी पड़ती है। विश्वास किये बिना प्राप्तिका साधन नहीं होता और साधन हुए बिना भगवत्प्राप्ति नहीं होती, अतएव शास्त्र, संत और आत्मापर विश्वास करो।

गीताप्रेसका काम—भगवद्भावोंका प्रचार

जिस गीताके प्रचारके लिये भगवान् स्वयं कहते हैं कि गीता-प्रचारकके समान मेरा न तो कोई प्रिय भक्त है और न होगा। वह काम भगवान्‌का ही काम है।

बुद्धिका, जाननेका अभिमान और मान-बड़ाईकी इच्छा—यह भगवत्प्राप्तिमें रुकावट है। कंचन-कामिनीके त्यागकी यहाँ कोई बात ही नहीं है, क्योंकि प्रेसमें इसका कोई सवाल ही नहीं उठता। कामिनीकी तो कोई बात ही नहीं है। रुपयोंका भगवान्‌के दरबारमें कोई घाटा नहीं है। उद्देश्य त्यागका होना चाहिये। भगवान्‌का काम समझना चाहिये। प्रसाद पानेसे तो विशेष लाभ होना चाहिये। भगवत्-प्रसादमें कोई आपत्तिकी बात नहीं है। पवित्र भोजन है। प्रसाद न लेना अभिमान ही तो है। काम भगवान्‌का समझना चाहिये। लक्ष्य, ध्येय परमात्माकी प्राप्तिका रहना चाहिये। दोषोंका सुधार होना चाहिये, दोषोंको घृणाकी दृष्टिसे देखना चाहिये। अपनेसे दूसरेको हृदयसे श्रेष्ठ समझे। काम करके खूब प्रसन्न होवे।

ऐसा कार्य, ऐसा स्थल पाकर भी अपना काम नहीं होगा तो हम सबके लिये लज्जाकी बात है। आपके लिये ही नहीं, मेरे लिये भी लज्जाकी बात है।

हम सभी भगवान्‌के सेवक हैं। केवल कामकी जिम्मेदारी अलग-अलग है। भगवान्‌के सिद्धान्तका प्रचार होना ही भगवान्‌का उद्देश्य है। रुपये-पैसेका बाहरी व्यवहार नीतिके अनुसार ही करें, परंतु हृदयमें हर समय '**समलोष्टाश्मकांचनः**'

प्रवचन-दिनांक—२९-११-१९३७, गीताप्रेस, गोरखपुर।

यह पाठ पढ़ता रहे।

भगवान्‌की गीताको, भगवान्‌के सिद्धान्तोंको, भगवान्‌की लीलाको आदर देना चाहिये। सारी दुनियाके रुपये भगवान्‌के ही हैं। चाहे नष्ट हो जायँ या दस गुने हो जायँ, कोई चिन्ता नहीं। यह तो साधारण बात हुई। विशेष बात यह है—

वृन्दावनमें भगवान्‌के सखा, सहेलियोंका कैसा व्यवहार था। हमलोगोंका भी भगवान् ऐसा ही व्यवहार देखना चाहते हैं। सभी एक-दूसरेको भगवान्‌की दयाका विशेष पात्र समझें। अपने विषयमें यह खयाल रखे कि अभिमान न आवे। भगवान् सब सखियोंको छोड़कर एक विशेष सखीको ले गये। उसको भी जब अभिमान आया, तब भगवान् अन्तर्धान हो गये। जब सबका अभिमान नष्ट हो गया, तब भगवान् प्रकट हो गये।

प्रेसको भगवान्‌की लीलास्थली समझकर कोई भी देखने आये तो उद्धवको देखकर गोपियोंको जो आनन्द हुआ, उसका सत्कार किया, वैसा ही हमें भी होना चाहिये। हमारी भी वैसी ही अवस्था हो जाय तो भगवान्‌को प्रकट होनेमें रुकावट न हो, गोपियोंको प्रभासक्षेत्रमें भगवान् मिले ही।

कोई भी सिद्धान्तकी बात मालूम हो जाय तो उसका विशेष आदर करे। एक साधारण सिद्धान्त होता है, एक विशेष होता है। साधारण सिद्धान्त मनमें निर्णय कर लिया कि रुपयेके लिये बिक्री विभाग नहीं खोलना है। कोई भी नया काम नहीं करना है, रुपयेकी आवश्यकता नहीं है। सिद्धान्तके सामने रुपये मिट्टीके समान भी नहीं हैं। रुपयोंके तो त्यागसे ही भगवान् मिलते हैं। कोई पचास हजार रुपये देकर अपना नाम लगानेकी बात करे तो नहीं लेना चाहिये।

कोई नामके लिये पाँच लाख रुपये दे तो भी मैं उनको किसी प्रकारका आदर नहीं देता, पेशाबकी तरह समझता हूँ।

औषधालय आदि लोकोपकारक कामका ऐसी संस्थासे किसी प्रकारका सम्बन्ध जोड़नेका भी मैं पक्षपाती नहीं हूँ। आगे जाकर मुक्तिका काम, सिद्धान्तका काम तो उठ जाय और ये काम बने रह जायँ, क्योंकि आर्तलोग उसे बनाये रखेंगे। गोविन्द भवन, कलकत्ताका औषधालय बद्रीदासजी, ज्वालाप्रसादजी और मालजीके आग्रहके कारण चालू किया गया।

संस्थाका प्रधान उद्देश्य यह है कि भगवान्के विरोधी भावोंका प्रेसके द्वारा प्रचार न हो और भगवान्के खास भावोंका जिस किसी प्रकार प्रचार करे। तन, मन और धनसे परिश्रम करके जिस किसी प्रकार हो प्रचार करे।

न समझनेके कारण लोगोंको मेरे रुपयोंके आदरके व्यवहारको देखकर कभी बाहरी लोभकी वृत्ति जागृत हो जाय। वे लोग प्रेसके लिये लोभ करने लगें तो प्रचारमें रुकावट हो जाय। अपने निजी लाभके लिये यदि वे इस प्रकार अनुचित लोभ करने लग जायँ तो उनकी हानि हो जाय।

प्रचारमें यदि रुपये लगें तो वह घाटा नहीं है, असली लाभ है। सिद्धान्तके प्रचारके लिये रुपये कोई चीज नहीं है। यह होते हुए भी यह उदारता व्यवहारमें न लाये। लानेसे व्यवहार बिगड़ जायगा, क्योंकि लोग रुपयोंका आदर करनेवाले हैं।

अपने लोगोंके द्वारा भगवान्से विरुद्ध सिद्धान्तोंका प्रचार न हो। रुपयोंका नुकसान नहीं देखा जाता, यह रुपयोंका ही दासत्व है।

१. सिद्धान्तकी भूल। २. अशुद्धि। ३. असुन्दरता—यह क्रमशः तीन नम्बर है।

यह कोई व्यवसाय थोड़े ही है। रुपये कमाने थोड़े ही बैठे हैं। गीताप्रेसकी जड़ यही है। इसी सिद्धान्तपर गीताप्रेसकी स्थापना हुई। गीता कलकत्तामें बैजनाथजीकी प्रेसमें छपने गयी, उनको रुपये अधिक देनेपर भी अशुद्धि ठीक करनेके लिये मशीन रोकना बहुत भारी लगा, इसीलिये यह विचार हुआ कि अपना प्रेस स्थापित करना पड़ेगा।

इस सिद्धान्तका दुरुपयोग नहीं करना है कि अपने तो मशीन बन्द होती ही है, पीछे सुधार देंगे। आज ही शुभ-मुहूर्त समझकर गोपियोंका-सा, सखियोंका-सा प्रेम करे। एक-दूसरेको देखकर उसको मालिक समझे, प्रेमका व्यवहार करे।

अभिमानका व्यवहार हो जाय तो एकान्तमें बैठकर रोवे—हे प्रभु! मेरे अपराधके कारण आप रुके बैठे हैं।

हरेक आदमीमें हुकूमत न आवे, दूसरेकी आत्मा दुःखे ऐसा व्यवहार न हो। **अमानी मानदो मान्यो**—इस श्लोकको समझो।

यदि हम भगवान्‌के भक्त हैं तो एक-दूसरेको मान दें, किन्तु स्वयं न चाहें। मान बुरी चीज है। जो दूसरे चाहें वे लें, हमें तो अलग ही रहना है। खूब वैराग्य, त्यागसे रहे, प्रेमसे रहे, सबसे प्रेम करे।

काशी शंकरकी है तो गीताप्रेस भगवान्‌का है। अपने लिये तो मान लेनेसे ही यह बात मुक्तिदायिनी है।

गोपियाँ यदि आपसमें लड़तीं तो क्या यह संभव था कि भगवान् वहाँ प्रकट होते? वहाँ तो प्रेमकी बाढ़ आ रही थी।

पाँच आदमियोंके पास मन रहते हुए भी अन्तकालमें जाना नहीं हुआ। लच्छीरामजी मुरोदिया-कलकत्ता, बैजनाथजी चौधरी-सीकर, मोदीरामजी-हांसीवाला, जगन्नाथजी डोकानिया-भागलपुर, हरिकिशनदासजी जालान-गोरखपुर। भगवान् स्वयं जाते समय

अर्जुनसे नहीं मिले। उनकी बात वही जानें। उद्धवको बद्रिकाश्रम भेज दिया, अर्जुनको बुलाया नहीं, बलदेवजी समाधिमें स्थित हो गये। भगवान्ने एरका घासकी धारसे लोगोंको पार किया; रामचन्द्रजीने सरयूकी धारसे पार किया। भगवान्से चाहे जिस तरहका भी सम्बन्ध हो, पार करनेवाला है। प्रेम एवं प्रभाव दो ही चीज सबसे बढ़कर है।

पं० लादूरामजीके दर्शन करानेके विषयक प्रश्नका उत्तर।

दर्शन करानेकी प्रभुकी सामर्थ्य है। महान् पुरुष ही करा सकते हैं। ऐसे महान् पुरुषोंके दर्शन हमको हो जायँ तो भगवान् अपने घर बैठें। जिनकी भगवान्से मिलानेकी सामर्थ्य हो उनसे वार्तालाप हो जाय तो फिर अपनी स्थिति किस तरहकी हो जानी चाहिये। उनका कोई संकेत मिल जाय तो हम धन्य हैं। यदि आज्ञा प्राप्त हो जाय तब तो हमारा बस काम ही हो गया। ऐसे पुरुष संसारमें हैं या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। भगवान्के यहाँ कमी तो है नहीं, और नाम किसका बताया जाय।

इन बातोंमें इतनी बात भरी पड़ी है, जितनी निकाले उतनी ही निकल जाय। इनको भले ही साधन बनाकर काममें ले आवे, जितना रहस्य निकाले, निकल सकता है। उन महापुरुषोंके चिन्तन, दर्शन, भाषण, वार्तालाप, स्पर्श, संकेत, आज्ञा और वरदानसे परम पवित्र ही नहीं, अपितु परमात्माको प्राप्त हो जाय। वरदानसे तो गधोंका भी उद्धार हो जाय। मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? अनधिकारी जीवोंका भी उद्धार हो जाय।

अच्छे कप्तानके संकेतसे चलनेवाली सेना मृत्युसे बच जाती है। कप्तान अच्छे हों, चतुर हों, उनकी बात है। उनके संकेतसे बड़ी भारी सेनाका सामना करनेवाले सिपाही बच जाते हैं। वह

कहे पड़ तो पड़ ले। सट तो सट, खट तो खट, अगर उत्तर दें तो गोली लग जायगी। इतनेमें तो सिर फटसे चला जाता है। दौड़ रहे हैं आदेश मिलते ही एक मिनटमें सब सो जाते हैं। अच्छा कमाण्डर मृत्युसे बचा देता है, किन्तु-परन्तु लगाना ही मृत्यु है—यही बात यहाँ है। कप्तानके हाथमें सबके प्राण हैं। आज्ञापालनका यह उदाहरण सबसे बढ़कर है।

स्मरण—उस कप्तानकी ही तरफ देखते रहते हैं, क्या आज्ञा है, स्मरण तो बना ही हुआ है।

विधान—उसका किया हुआ सब विधान मान्य है। शरणागतका भाव है। वह कप्तान अपनी शक्तिभर उस सेनाको बचाता ही है। सबसे ज्यादा उत्तीर्ण होनेवालेको इनाम मिलता है। अपनी शक्तिके अनुसार ही इनाम मिलता है।

भगवत् विषयमें इतना ही अन्तर है। जरा-सी टूँ-टाँमें प्राण नहीं जाते, वस्तुसे वंचित रह जाते हैं। इसीको प्राण जाना भले ही समझे।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

वैराग्य एवं उपरामताका महत्त्व

वैराग्यकी बात तो वैराग्यवान् पुरुषोंके मुखसे शोभा देती है, जिन्हें वास्तवमें बाहर-भीतरसे वैराग्य हो गया है। मैं तो एक साधारण गृहस्थ हूँ, क्या कह सकता हूँ। स्थान भी वैराग्यके उपयुक्त नहीं है। उत्तराखण्डकी भूमि हो, गंगाका किनारा हो, वन हो, वैराग्यमें स्थित होकर वैराग्यकी बात कही जाय तो सम्भव है वेश्याके भी वैराग्य हो जाय। यहाँ आराम, ऐशमें फँसे हुए हैं, चित्तमें वैराग्य कैसे हो। मुझे लगभग चौदह वर्षकी अवस्थामें मंगलनाथजीके दर्शनसे वैराग्यकी वृत्ति हो गयी। मुझे भी ऐसी उपरामता, वैराग्य कभी आ सकता है, ऐसा मनमें आने लगा। वे वैराग्यके आदर्श पुरुष थे। उनके दर्शनोंका महान् फल हुआ। छोटी अवस्थामें वैराग्यका अनुभव होने लगा। घरवाले सोचने लगे कि कहीं संन्यासी न हो जाय, सब घरवाले ऐश, आराममें फँसानेकी चेष्टा करते थे। महान् पुरुषोंका वैराग्य देख-देखकर दूसरा ही चित्त हो जाता है। ऐसा भाव होता था कहीं एकान्तमें जाकर भजन-ध्यानमें ही समय बितावें। वैराग्य बड़ी अच्छी चीज है।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥

(गीता १५। ३-४)

इस संसारवृक्षका स्वरूप जैसा कहा है वैसा यहाँ विचारकालमें नहीं पाया जाता। क्योंकि न तो इसका आदि है, न अन्त है तथा न इसकी अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है। इसलिये इस अहंता,

ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले संसाररूप पीपलके वृक्षको दृढ़ वैराग्यरूपी शस्त्रद्वारा काटकर उस परम पदरूप परमेश्वरको भलीभाँति खोजना चाहिये, जिसमें गये हुए पुरुष फिर लौटकर संसारमें नहीं आते; और जिस परमेश्वरसे इस पुरातन संसार-वृक्षकी प्रवृत्ति विस्तारको प्राप्त हुई है, उसी आदि पुरुष नारायणके मैं शरण हूँ—इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उस परमेश्वरका मनन और निदिध्यासन करना चाहिये।

इस संसारवृक्षकी मूल बड़ी दृढ़ है जिसे दृढ़ वैराग्यरूपी शस्त्रसे काट डाले। दृढ़ वैराग्यसे काटना क्या है? संसारका चिन्तन न करना ही काटना है। इससे चित्तकी वृत्तियोंको हटा लेना उपराम हो जाना ही इसे काट डालना है। दृढ़ वैराग्यरूपी शस्त्रके द्वारा काटकर उस पदकी खोज करनी चाहिये। जहाँ जाकर मनुष्य वापस नहीं आता। इसका उपाय उस परमात्माकी शरण होना चाहिये, जिस परमात्मासे यह संसार उत्पन्न हुआ है। जो सारे संसारके पदार्थोंमें वैराग्य कर लेता है, जिसकी परमात्मामें स्थिति हो जाती है, उसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। वह स्थिति इस प्रकार है—

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

(गीता १५।५)

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है, जिनकी परमात्माके स्वरूपमें नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं—वे सुख-दुःखनामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपदको प्राप्त होते हैं?

जिनमें मान और मोह नहीं है, आसक्तिको जीत लिया है, वैराग्यके नशेमें चूर हैं, नित्य भगवान्‌में चित्त है, कामनाएँ नष्ट हो गयी हैं, द्वन्द्वरहित है वह उस पदको पाता है।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता १५। ६)

जिस परम-पदको प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसारमें नहीं आते, उस स्वयं प्रकाश परम-पदको न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही; वही मेरा परम धाम है।

सबसे पहला उपाय वैराग्य है, उस वैराग्यरूपी शस्त्रसे संसारवृक्षको छेद डालो, फिर भगवान्‌की शरण हो जाओ।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

इन्द्रिय और पदार्थोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले भोगोंको संस्पर्शजा कहते हैं। ये दुःखके ही कारण हैं, इनका परिणाम दुःख होता है; ये आदि, अंतवाले हैं, अनित्य हैं। एक क्षणमें हैं दूसरे क्षणमें नहीं हैं। इनमें ज्ञानी, पण्डित नहीं रमते, जो रमते हैं वे पण्डित नहीं हैं। वैराग्यवान्‌का दर्शन कर ले और जान जाय तो वैराग्यकी लहरें उठने लग जायँ। वैराग्यवान्‌के पासमें वैराग्यकी, आनन्दकी लहरें उठने लगती हैं। वैराग्यमें जितना

आनन्द है उतना भोगोंमें नहीं है। दधीचि ऋषि बड़े ही वीतरागी पुरुष थे। संसारसे एकदम वैराग्य करके परमात्माके ध्यानमें मस्त थे। उनके पास इन्द्र आये, प्रणाम करके बैठ गये। जब नेत्र खोले तो इन्द्रसे पूछा—आप क्यों आये? इन्द्रने कहा—परमात्माके ज्ञानकी इच्छासे। ऋषिने कहा—तुम उसके अधिकारी नहीं हो। तुम जिस आनन्दका भोग करते हो, वह आनन्द तो एक कुत्तेको भी मिलता है, उसके और तुम्हारे आनन्दमें अन्तर नहीं है। वे किस आनन्दमें मग्न थे कि उन्हें इन्द्रके भोग भी कुत्ते और सूकरके भोगके समान मालूम होते थे। किस आनन्दमें? ऐसा प्रतीत होता है? वैराग्यमें कितना आनन्द है। संसारके सारे भोगोंकी यही दशा है। जब वैराग्य जागृत होता है, उस समयका आनन्द बड़े ही महत्त्वका है। चित्तमें वैराग्य होकर संसारका त्याग ही उपरामता है, वैराग्यसे भी बढ़कर आनन्द उपरामतामें है। उससे भी बढ़कर आनन्द परमात्माके ध्यानमें है। उपरामतासे ही ध्यान होता है। ध्यानसे भी बढ़कर आनन्द परमात्माकी प्राप्तिमें है। भगवान्‌की प्राप्तिमें कितना आनन्द है उसे बताया ही नहीं जा सकता। जनकजीके हृदयमें वैराग्य है, पर उपरामता नहीं है। वेदव्यासजीमें उपरामता नहीं है, शुकदेवजीमें उपरामता है। बालक मिट्टी, पत्थर फेंकते हैं, वैराग्यकी दशामें उन्हें पता ही नहीं। सभामें गये, पुष्प-वर्षा हुई। पर वे समान हैं। धूल बरसे तो वही, पुष्प बरसे तो वही। वहाँ आदर हुआ, प्रणाम किया। पूछा तो कहा यह छोटा तो है पर हम गुणोंको प्रणाम करते हैं। एक समय शुकदेवजी वैराग्य अवस्थामें जा रहे थे, मार्गमें स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। शुकदेवजी आये तो वैसे ही स्नान करती रहीं, किन्तु व्यासजी आये तब सबने वस्त्र पहने। व्यासजीने कहा वृद्धकी शर्म की

गयी, जवानकी नहीं। शुकदेव मेरा पुत्र है उससे बिल्कुल लज्जा नहीं की। स्त्रियोंने कहा—आप दोनों ही वैराग्यवान् हैं, पर आपके पुत्रको पता ही नहीं कि यहाँ क्या हो रहा है, कौन हैं? क्या कर रहे हैं। आपको ज्ञान है कि यह स्त्री है, यह पुरुष है; उन्हें तो यह पता ही नहीं है। इसी प्रकारकी वैराग्ययुक्त उपरामता धारण करनी चाहिये। वैराग्यवान् पुरुष जिस मार्गसे निकलता है वहाँ वैराग्यकी बाढ़ आ जाती है। वैराग्यवान् पुरुष हो, वैराग्यकी बातें हों तो कौन पुरुष है जिसे वैराग्यका भाव नहीं होगा। वहाँ तो वैराग्यका स्रोत बहने लगता है, मानो वैराग्यकी वर्षा हो रही है। आसक्तिरूपी ज्वर शान्त हो जाता है, काम, क्रोध तो वहाँ रह ही नहीं सकते।

वैराग्य और उपरामतामें क्या अन्तर है? पदार्थोंको देखते हैं उनमें चित्तवृत्ति आकृष्ट नहीं होती तो वैराग्य है। पदार्थोंमें चित्तवृत्ति जाती ही नहीं, देखनेमें उपरामता हो जाती है। जब हमारे नेत्रों, कानोंका, देखने-सुननेकी ओर मन ही नहीं जाय, स्त्री सामने होते हुए नहीं दीखे, उस अवस्थाका नाम उपरामता है।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता २। ५८)

कछुआ सब ओरसे अपने अंगोंको जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियोंके विषयोंसे इन्द्रियोंको सब प्रकारसे हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा समझना चाहिये।

उसकी बुद्धि स्थिर है यह अवस्था परम उपरामताकी दिखायी है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

(गीता २। ६४)

परन्तु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है।

आनन्दको प्राप्त होता है। स्वच्छताको प्राप्त होता है। इससे अधिक वैराग्य यह है—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहङ्काररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

सारी कामनाओं, अहंकार, ममताको त्यागकर जो विचरता है वह शान्तिको प्राप्त है। उपरोक्तको प्राप्त होनेपर तो पदार्थोंकी ओर वृत्तियाँ जाती ही नहीं हैं। यहाँसे लेकर ब्रह्मलोकतकके पदार्थ-भोग काकविष्ठाके समान प्रतीत होते हैं। शुकदेवजी, जड़भरतजी, नामदेवजी, जनकजी, ऋषभदेवजी इत्यादिकी अद्भुत अवस्था थी, वह हर समय रहा करती थी।

ऋषभदेवजी कहीं जा रहे हैं, वनमें आग लगी है। वनमें विचरनेकी तरह आगमें विचरते हैं, शरीर दग्ध हो गया, पता ही नहीं चला।

एक राजाने बलिके लिये दूतोंसे एक मनुष्य मँगवाया। जड़भरतको हृष्ट-पुष्ट देखकर दूत ले गये। राजाने समझा बहुत

अच्छी बलि है। जड़भरतजीको जैसे कहते हैं नमस्कारादि करनेको तो वैसे ही करते हैं, उपरामतामें मस्त हैं। मारनेकी तैयारी हो रही है, उन्हें पता ही नहीं ध्यानमें मस्त हैं, मस्तक नीचा किया गया, तलवार तैयार की गयी कि देवी प्रकट हो गयी और बोली आज आपकी हत्या हो जाती तो मुझे कलंक लग जाता। उनको पता ही नहीं था कि मैं मारा जानेवाला हूँ। वैराग्यमें किसी भी दोषकी गुंजाइश ही नहीं है।

रागसे कामना, कामनासे क्रोध उत्पन्न होता है, तभी पतन होता है। जब राग ही नहीं है तो कोई दोष नहीं होता।

हमें भी प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये—हे नाथ! सारे संसारसे प्रेम हटाकर, वृत्ति हटाकर आपसे ही प्रेम हो। संसारका चिन्तन न होकर भगवान्‌के ध्यानमें मस्त रहे, यही बढ़िया बात है।

प्रभुका ध्यान और संसारमें उपरामता रहे। संसारिक विषयोंसे हमारी वृत्ति हटाकर आपका ही अनन्य चिन्तन हो, यही भिक्षा प्रभुसे माँगनी चाहिये।

मान, बड़ाईके त्यागसे तत्काल कल्याण

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

इसके चार चरण हैं। अनन्यभावसे चिन्तन करते हुए उपासना करते हैं, मुझको हर समय याद रखते हुए मेरी भक्ति करते हैं। मेरे गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, प्रेम, लीला आदिकी भक्ति करते हुए श्रवण-मनन करते हैं, भगवान् उनका भार वहन करते हैं जैसे कुली लोग बोझा ढोते हैं। उन भक्तोंका योगक्षेम वहन करते हैं। योगक्षेम अर्थात् अप्राप्तकी प्राप्ति, प्राप्तिकी रक्षा।

लौकिक योगक्षेम—उनके वर्तमान धनादिकी रक्षा और आवश्यकताकी प्राप्ति तथा अलौकिक योगक्षेमका पता नहीं होने देते। उत्तम कर्म किये हुए हैं उनकी रक्षा करते हैं।

अप्राप्तकी प्राप्ति क्या—मैं स्वयं प्राप्त हो जाता हूँ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।

(गीता १०। १०)

भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

प्रह्लाद भगवान्‌का सब प्रकारका चिन्तन करते हैं। भगवान् उसकी लौकिक, पारलौकिक सब रक्षा करते हैं। विषसे बचाया, अग्निसे बचाया और हिरण्यकशिपुको मारकर राज्य दिया।

प्रवचन-दिनांक—२८-७-१९३९, गोरखपुर।

पारलौकिक—उसकी भक्तिका नाश नहीं होने देते। वह हिरण्यकशिपुके चाहे जितने कष्ट देनेपर भी विचलित नहीं हुआ, अन्तमें स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। ध्रुवकी बात भी देखो। लौकिक, पारलौकिक दोनों दिये।

पाँच वर्षका बालक वनमें गया, भगवान्‌ने रक्षा की। उसको राज्य दिया। भारी-से-भारी विपत्तिपर भी डटा रहा, अन्तमें भगवान्‌के दर्शन हो गये। ध्रुव स्तुति गाना चाहते हैं, भगवान्‌ने शंख छुआ दिया, सब शास्त्र बिना पढ़े याद हो गये, अन्य कई वर दिये। भगवान् दोनों तरहसे रक्षा करते हैं। उत्तम भक्त केवल भगवान्‌को ही चाहता है। प्रह्लादके लिये पशु बने। नृसिंह बने, उसका बोझा ढोया। काम पड़नेपर सिरपर भी ढोते हैं।

मुँहपर हरताल लगानेवालेके* लिये स्वयं भार ढोकर लाये। मेरी चौवन वर्षकी आयु हो गयी बहुत-सी बातें पढ़ी-सुनी, यही बात देखनेमें आयी—'**मां भजस्व**', भगवान्‌के भजनसे बढ़कर और कोई चीज नहीं मिली। आत्माके उद्धारके बहुत-से उपाय गीतामें बतलाये गये। सभी उत्तम हैं, एक-एकको काममें लानेसे उद्धार हो सकता है।

खास कसौटी राग-द्वेषका नाश होकर समता आना है। गीतामें यही बात जगह-जगह आयी है।

ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग किसी भी मार्गसे चलें, साधन मार्गमें भी समता, सिद्ध होनपर भी समता, समताकी कसौटी है। जबतक विषमता है, वह भगवान्‌को नहीं प्राप्त होता।

सेवाकी बात—निष्काम कर्मयोग, समत्वयोग, फल न चाहना, स्वार्थको त्यागकर कर्म करना। उसका महत्त्व बताते हैं—

---

* यह कहानी विस्तारसे गीताप्रेससे प्रकाशित 'शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ' पुस्तकमें 'योगक्षेमका वहन' नामक शीर्षकमें देखें।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २। ४०)

इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है। बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है।

थोड़ा भी पालन महान् भयसे तार देता है, निश्चय ही तार देता है। थोड़ा भी का क्या भाव है? क्रियासे थोड़ा या भावसे थोड़ा? भगवान्‌का आशय है भावसे थोड़ा न हो, क्रिया चाहे मामूली ही हो। सकामभावसे लाखों वर्ष करें, पर निष्कामभावसे एक मिनट भी करें तो उद्धार है।

प्रत्यक्ष प्रमाण है। हमलोग लाखों वर्षसे करते आ रहे हैं। सकाम ही तो करते हैं। एक मिनट क्या, एक क्षण भी निष्कामभाव पूर्ण हो गया, बस काम समाप्त है।

छोटी-सी क्रियासे काम समाप्त है। हमलोगोंसे छोटी-सी क्रिया भी निष्कामभावसे हो तो फिर भगवान्‌के वचन सामने हैं। बातें तो बतलायी भी जा सकती हैं। निष्काम होना बड़ा कठिन है। कारण, मूर्खता है।

निष्कामभाव है, व्यवहारसे क्या पता लगे। दूसरा न जाने तो जनानेकी क्या आवश्यकता है। तुमको सन्तोष होना चाहिये। तुम्हारी आत्मा कह दे। बाहरकी बात, क्रियाकी बात क्या कहें, द्वापरयुगमें भी तो निष्कामभाव बहुत कालसे लुप्त था।

स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।

(गीता ४।२)

भगवान्‌को भी उस समय वर्तमान कोई उदाहरण नहीं मिला।

जनकादि जो हो गये हैं उनका ही उदाहरण दिया। '**पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्**' कहा। जब उस समय उदाहरण नहीं मिला तो अब क्या बतावें। अपने मनकी बात बताता हूँ—

बाढ़में सेवा करने गये मजदूरी नहीं ली। घरका खर्च खाया। त्याग तो है पर इतना मात्र ही निष्काम नहीं। प्रशंसा सुनकर सुख हुआ न? उत्तम कार्यका फल सुख ही तो होता है। प्रशंसा सुनकर सुख हुआ? तुमने अपने मुखसे अपनी बड़ाईकी बात कही, बस सुख मिल गया। कहनेमात्रसे समाप्त है। स्वर्गके भी लायक नहीं रहे। शास्त्रोंमें कहा है जो मनुष्य उत्तम कर्म करके अपने मुँहसे कह देते हैं, वह कर्म समाप्त हो जाता है। त्रिशंकुको इन्द्रने फुसलाकर उसके पुण्य उसके मुखसे कहलाये, अपने मुँहसे कहनेसे पुण्य समाप्त हो गये और वह स्वर्गसे गिर पड़ा। विश्वामित्रने कहा वहीं रहो। त्रिशंकुके मुँहसे निकली लारसे होनेवाली नदीका नाम कर्मनाशा है, जिसमें स्नान करनेसे पुण्यका नाश हो जाता है।

हम अपने मुँहसे नहीं कहते, किन्तु दूसरे कहते हैं ये बड़े अच्छे हैं, करके नहीं कहते। इसको सुनकर सुख मिला तो वह कर्म भी समाप्त हो गया। सुख मिला, यही तो फल है।

बगीचेकी क्यारी भी सींची जाय और उसी पानीसे तर्पण हो जाय, दोनों नहीं होते। वह पानी पितरोंको नहीं मिलता, यदि क्यारीमें पानी जानेका भी उद्देश्य है।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥

(गीता ६। ४)

जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें और न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस कालमें सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता २।५७)

जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तुको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है।

लोग चाहते हैं कल्याणमें हमारा लेख निकले। लेख भेजनेमें उद्देश्य क्या है? नाम चाहते हैं या नहीं। नहीं चाहनेपर भी सुननेपर प्रसन्नता होती है या नहीं। बहुतोंका तो उद्देश्य ही धन कमाना है, उनसे अच्छे मान-बड़ाई चाहनेवाले हैं। उनसे अच्छे कीर्ति और नाम चाहनेवाले हैं। उनसे अच्छे वे हैं जो सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं। उनसे अच्छे वे हैं जो प्रसन्न तो नहीं होते, पर प्रशंसा उन्हें बुरी नहीं लगती। होना क्या चाहिये?

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

(गीता १२।१९)

जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है—वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

मान-अपमान दोनोंकी एकता हो जाती है।

स्प्रिंग दोनों तरफसे दबायी जाती है। प्रकृतिके प्रवाहका, मान-प्रतिष्ठाकी इच्छाका स्वाभाविक दबाव पड़ता है। अनुकूल लगना, सुख प्रतीत होना—यह मानका दबाव है। बुरा लगना, अपमान, निन्दा होनेपर बुरा समझना—यह अपमानका दबाव है।

यदि अपना कल्याण चाहते हो तो अपमानको अमृतके समान समझो और मानको विषके समान समझो। तब जाकर समानता होगी।

इडा, पिंगला नाड़ीकी समानताका नाम सुषुम्ना है। इसी समय योगीका ध्यान लगता है। मनुने यही बतलाया है। यह बात तो दूर रही। आज तो फूलोंकी माला पहनते ही फूल जाते हैं। जूतोंकी माला पहनानेपर भी इसी प्रकारकी प्रसन्नता होनी चाहिये। फूलोंकी माला जूतोंकी मालाकी तरह प्रतीत होनी चाहिये। महर्षि पतंजलि कहते हैं—**वितर्कबाधने प्रतिपक्ष भावनं।** (साधनपाद २। ३३) हिंसाको हटानेके लिये अहिंसाका पालन करना चाहिये तथा हिंसामें दोषदर्शनकी भावना करनी चाहिये।

किसीने इत्र लगा दिया, हम प्रसन्न होते हैं। वास्तवमें यदि उस समय हमको यह प्रतीत हो कि मानो किसीने पेशाब लगा दिया, तब समझना चाहिये कि मनमें वैराग्य है।

भक्तोंकी, महात्माओंकी गति उलटी ही तो है। उनकी महिमा तुलसीदासजी कहते हैं—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

ऐसी महिमा गायी है। विचार करो जितने काम वे करते हैं प्रत्येक काममें विलक्षणता रहती है। जैसे धनके दास स्वार्थीके प्रत्येक काममें पैसेकी बात रहती है। बस हानिके कामके समीप नहीं जाना चाहते। महात्माओंकी तो उलटी गति है।

बाढ़में आपने काम किया पचहत्तर प्रतिशत एवं माधवजीने किया पचीस प्रतिशत। नाम माधवजीका हुआ, इसको सुनकर इतनी प्रसन्नता हो कि वाह, बड़ा अच्छा हुआ। हम तो बच गये। अगर ऐसा भाव हो तो समझना चाहिये कि निष्कामभाव है। यहाँ तो अभी गये ही नहीं, पहलेसे ही अखबारोंमें समाचार छपवाते हैं

कि हम जानेवाले हैं और चले गये तब तो आकर बस सीधी तरह नहीं, किसी-न-किसी बहानेसे ही अपनी बड़ाईकी बात छपवाते हैं। वास्तवमें सेवाका काम करते समय इतनी प्रसन्नता होती है, इन्द्रियोंमें अद्भुत चेतनता आ जाती है। भगवान् कहते हैं—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

(गीता २। ६४)

अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है।

गीतामें प्रसाद तीन अर्थमें आया है (कृपामें)—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

(गीता १८। ५८)

उपर्युक्त प्रकारसे मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे समस्त सङ्कटोंको अनायास ही पार कर जायगा।

मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।

(गीता १८। ५६)

मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

(गीता १८। ७३)

अर्जुन बोले—हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है।

सात्त्विक सुखके लिये **आत्मबुद्धिप्रसादजं** आत्मशुद्धि विषयक प्रसन्नता सात्त्विक है **प्रसादे सर्वदुःखानां हानिः।**

यहाँ चित्तकी प्रसन्नताका नाम 'प्रसाद' है।

भगवत्कृपा, अन्तःकरणकी पवित्रता, सात्त्विक सुख, मन्दिरोंका प्रसाद—यह सब प्रसाद है।

असली प्रसाद दो तरहसे होता है। एक तो हमारी भावनासे दूसरी बात पुजारी महान् पुरुष हो, भगवान् साक्षात् भोग लगा लें, फिर बचा हुआ जो हो वह प्रसाद है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

स्वयं खाते हैं बचा हुआ प्रसाद है। यह पूजाकी बात है। ऐसे ही यज्ञ, तप सबसे बचा हुआ प्रसाद है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३। १३)

यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। और जो पापीलोग अपना शरीरपोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं।

अपनी भावनासे भी प्रसाद हो जाता है। या तो पुजारीकी हो या हमारी, दोनोंमें एकको होनेसे ही काम हो जाता है।

निष्कामभाव थोड़ा भी वास्तवमें हो जाय तो कल्याण है। राग-द्वेषका अत्यन्त अभाव होनेसे ईर्ष्या नहीं होगी, काम करनेमें प्रसन्नता होगी। राग हो गया वहाँ द्वेष होगा ही, दोनों मित्र हैं, काम-क्रोध पिता पुत्र हैं। जहाँ ये हैं, वहाँ न दुःखोंकी कमी है न दुर्गुणोंकी।

दस वर्ष सेवा करें, राग-द्वेष हैं तो वे निष्कामभावको उत्पन्न होने ही नहीं देंगे, खा जायँगे। गरम तवेपर पानी पड़ते ही छन करके स्वाहा हो जायगा। राग-द्वेषका मूल कारण अज्ञान है। अज्ञानका नाश ज्ञानसे होता है। तत्त्वज्ञान जाननेवाले महान् पुरुषकी शरण जाकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिये—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४। ३४)

उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

परन्तु इनसे दूसरे, अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसन्देह तर जाते हैं।

कहनेके अनुसार उपासना करनेवालेका भी उद्धार हो जाता है। हमको तो ईश्वर, महात्मा, ज्ञान, भक्ति, प्रेम और सत्संग किसीका भी आश्रय नहीं है। साढ़े तीन हाथके शरीरका आश्रय ले रखा है। यह तो गड्ढेमें डालनेवाला है।

भगवान् कहते हैं—

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥

(गीता ४। २०)

जो पुरुष समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्यतृप्त है, वह कर्मोंमें भलीभाँति बर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता।

सबसे बढ़कर आश्रय लेनेयोग्य भगवान्, उनके नामका जप एवं उनका ध्यान है। शरण लेकर, भरोसा रखकर करे। थोड़ी भी क्रिया निष्कामभाव पूर्ण चाहिये, कहीं कमी न हो। एक गिलास जल ही पिला दो। भाव पूरा निष्काम होगा तो कल्याण है। निष्कामभाव होगा तो अत्यन्त प्रसन्नता होगी। ममता, अहंकार वहाँ नहीं होगा। कामना नहीं होगी।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

चार चीजें इसमें बतायी इनका अभाव हो बस वहीं शान्ति है। कामना करनेवालेको शान्ति नहीं मिलती, और भी सूक्ष्म बात यह है कि मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा सबका वास्तवमें त्याग होनेपर भी यदि

यह भाव आ गया कि मैं निष्कामी हूँ तो भी मामला समाप्त है। यह अहंकार आ गया कि मैं निष्कामी हूँ, यही तो अहंकारका स्वरूप है।

यहाँ तो अहंता, ममता सब आ गयी। मैं और मेरा कर्म। ये चार बातें हमारेमें न हों तो फिर शान्ति मिलती ही है। पर हम तो अभी दूर पड़े हैं। पहली चीज **विहाय कामान्** इसीसे हमलोग दूर हैं। क्या कहें शान्ति सुख नहीं मिलता। अरे तुम क्या हमसे विनोद करते हो।

दृष्टांत—वेश्याने अमावस्याको ब्राह्मण भोजन कराना चाहा, ब्राह्मणने निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। एक भाँडको ब्राह्मण समझकर बुलाया, भोजन कराकर ऊपर देखने लगी कि विमान कहाँ है पुनः भाँडसे पूछा—तुम ब्राह्मण तो हो। भाँडने कहा—न मैं ब्राह्मण न तुम खत्राणी, विमान तो क्या पत्थर न गिर पड़े।

ऐसी बात है। हमलोग देखते हैं भगवान् आवें, कहीं भूकम्प न हो जाय, यह मकान न गिर पड़े।

महर्षि पतंजलि कहते हैं—**मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख-पुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।** (समाधिपाद १। ३३)

सुखी मनुष्योंमें मित्रताकी भावना करनेसे, दुःखी मनुष्योंमें दयाकी भावना करनेसे, पुण्यात्मा पुरुषोंमें प्रसन्नताकी भावना करनेसे चित्तके राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध आदि मलोंका नाश होकर चित्त शुद्ध—निर्मल हो जाता है।

खूब प्रसन्नता होनी चाहिये। प्लेगके रोगीकी सेवा करते हैं, प्लेगसे बचते भी हैं। रोगीसे घृणा नहीं है, रोगसे बचते हैं।

जबतक राग-द्वेष है, तबतक कठिनता है। वास्तवमें कोई कठिन बात नहीं है। ईश्वरकी शरण लेनेसे काम सिद्ध हो जाता है। कमी इसी बातकी है और कोई सहज उपाय नहीं है।

परमात्माकी शरण, उनके नामकी शरण तथा भजन करनेसे बहुत शीघ्र काम हो सकता है।

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। (गीता ९। ३३)

इस लोकको प्राप्त करके मेरा भजन करो। यह लोक अनित्य एवं सुखरहित है।

कोई सार नहीं है। जल्दी काम बना लो। नहीं तो अचानक एक दिन वारंट आ जायगा। वह टलनेका नहीं। थोड़ा भी ज्ञान हो जाय तो मान, बड़ाई टिक नहीं सकते और जागृत अवस्था होनेपर स्वप्न नहीं टिक सकता। ज्ञान होनेपर अज्ञान नहीं ठहर सकता है। मान किसका? शरीरकी पूजा, प्रतिष्ठा, सत्कार और मान—सब शरीरका ही तो होता है। तुम क्यों प्रसन्न होते हो? क्या तुम शरीर हो? शरीर तुम नहीं, शरीर तुम्हारा नहीं। तुम प्रसन्न होते हो, पुकारते हो—मैं शरीर, मैं शरीर। दो वस्तु है ज्ञेय और ज्ञाता। द्रष्टाके आधार दृश्य हैं। ज्ञाता चाहता है तो ज्ञेय ध्यानमें आते हैं।

यह ज्ञान हो जाय कि नाम, रूप मैं नहीं हूँ, ये मेरे भी नहीं हैं, फिर ममता, अहंता दोनों नहीं रहेंगे।

अच्छे विद्वान् निन्दा, अपमान नहीं सह सकते। जबतक यह बात है तबतक हृदयमें अहंकार भयंकर रूप धारण करके स्थित है। इन सब बातोंको सोचकर इन मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाको विदा करना है। नहीं तो आप कमाते रहो, ये खाते रहेंगे। सबकी जो दशा है वही तुम्हारी होगी। यह ज्ञानका उपाय बताया है। भक्तिका उपाय इससे सरल है। भगवान्‌का आश्रय लेना चाहिये। मान, बड़ाई और प्रतिष्ठा नहीं चाहना चाहिये। दूसरोंको खूब देनी चाहिये। दूसरोंको हमारे नहीं देनेसे उनका लाभ नहीं है, वे स्वयं त्याग करेंगे तभी उनका कल्याण होगा। अब भी चेतो। मान-बड़ाईका त्याग कर सको तो अपने कल्याणमें एक दिन भी नहीं लगे। ये मान-बड़ाई ही विष हैं। बढ़िया दूध है, दो बूँद विष मिला दिया सब जहर हो गया। कामिनी-कंचन छोड़े हुए हम आपको बतला सकते हैं, आप मुझे मान-बड़ाई त्यागे हुए लोग बताइये।

सर्वत्र भगवान्‌को देखनेसे सारे दोषोंका अभाव

सरल भावसे भगवान् बहुत शीघ्र मिलते हैं। मनुष्यमें अभिमान होता है वह सरल नहीं होने देता। हृदयके जो विनय, दया, मधुर भाव हैं, यह सब जिसके हृदयमें हों—उसको भगवान् बहुत शीघ्र मिलते हैं।

छः चीजोंमें बढ़ा हुआ प्रेम ही दोषी है—कंचन, कामिनी, देहका आराम, मान, बड़ाई, ईर्ष्या। ये दोष हट जायँ तो बहुत शीघ्र भगवान् मिल जायँ। ये छः दोष प्रधान हैं। अनुकूलता-प्रतिकूलता, प्रिय-अप्रिय, इष्ट-अनिष्ट—इन दोषोंसे कैसे मुक्त हो सकते हैं। यह बात भक्तिके सिद्धान्तसे कही जाती है।

भगवान्‌की भक्ति हृदयमें जागृत हो जाय तो, ये कोई दोष नहीं टिक सकते। जहाँ नेत्र जायँ, वहीं भगवान्‌को देखें। सारे संसारके अणु-अणुमें भगवान् दीखने लगें तो सारी बातें अपने-आप हो जायँ।

दो चीज हैं—अनुकूल और प्रतिकूल। दोनोंमें एक बुद्धि हो जाय। सर्वत्र भगवान्‌को देखें। जैसे प्रह्लादजीको खम्भमें, अग्निमें सर्वत्र भगवान् दीखते हैं। सर्वत्र दीखनेपर भगवान्‌से द्वेष नहीं कर सकता। भय तो हो ही नहीं सकता। भगवान्‌से भय तो क्या, क्रोध भी नहीं हो सकता। भगवान्‌का दर्शन करके वह तो आनन्दमें मुग्ध रहता है।

परमात्माके सिवाय कोई भी वस्तु प्रेमके योग्य नहीं है। संसारमें जो रमणीय बुद्धि हो रही है, वह यों ही रस प्रतीत होता है। भगवान्‌में प्रेम उत्पन्न होनेपर यह सब रस सूख जाता है। जैसे सूर्य उदय होनेपर जुगनूकी रोशनी नहीं दिखायी पड़ती है। वैसे ही भगवान्‌का प्रेम उत्पन्न होनेपर संसारका प्रेम नष्ट हो जाता है।

प्रवचन-दिनांक—९-८-१९३९, गोरखपुर।

इसके और दो उपाय हैं—नामजप, सत्संग। इनसे हृदय शुद्ध होता है। जैसे किसीके पास पारस हो तो क्या वह कौड़ियोंकी परवाह करता है, वैसे ही भगवान्‌का नाम है।

भगवान्‌की भक्तिके कई भाव बतलाये गये हैं। सबसे बड़ा माधुर्यभाव और सबसे छोटा दास्यभाव बतलाते हैं। अपने तो सबसे छोटे भावकी ही इच्छा करनी चाहिये। ऊँचा-ऊँचा भाव बड़े-बड़े महात्माओंके लिये ही सही, हमारे लिये तो दास्यभाव ही ठीक है। कभी-कभी सखाभाव भी आ जाय, अर्जुनके यही दो भाव थे।

भगवान् भी कहते हैं—**भक्तोऽसि मे सखा चेति।** सबसे छोटा होकर रहना चाहिये। सबके चरणोंमें रहना चाहिये। दासोंमें भी सबसे निम्न काम लेना चाहिये। दास्यभावमें चरणका तथा सखा-भावमें मुखारविन्दका ध्यान रहता है। दोनों मिला हुआ ठीक लगता है।

किसी समय एक क्षणके लिये प्रभु झाँकी दिखला दें तो फिर अलौकिक ही हो जाय। मुखारविन्दका दर्शन हो जाय तो फिर हमारी सामर्थ्य नहीं है कि हम उससे अपने नेत्र जरा भी हटा सकें। पलक भी नहीं पड़ सकती।

ऐसे प्रतीत न हो तो मनसे ही भगवान्‌के दर्शन करें। मुखारविन्द सौन्दर्यका केन्द्र है।

आनन्द न मिले, तो भी साधन करें

साधनमें आनन्द न भी मिले तो भी साधन करते ही रहना चाहिये। आनन्दके लिये साधन नहीं, अपितु साधनके लिये साधन करना चाहिये, फिर तो आगे जाकर साधन किये बिना रहा ही नहीं जाता।

सकामभावसे भजन करनेवाला न करनेवालोंसे हजारोंगुना श्रेष्ठ है। जो सकामभावसे नहीं करता पर आर्त्त अवस्थामें प्रार्थना करता है वह उससे श्रेष्ठ है। इससे भी वह श्रेष्ठ है जो आर्त्त अवस्थामें तो प्रार्थना नहीं करता; पर ज्ञान, शान्ति आदिके लिये प्रार्थना करता है।

सभी भगवान्‌के प्यारे बन जायँ, योग्य बन जायँ। हम भगवान्‌के होते हुए भी उनको अपना नहीं मान रहे हैं, यह अज्ञता नष्ट हो जाय। भगवान्‌को सब लोग सुहृद् जान लें। इस प्रकारकी प्रार्थना सकाम नहीं है, यह तो बड़ी उच्चभावना है। इसे वास्तवमें निष्कामभाव कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं है।

धन, जीवन, प्राण—सब साधन ही तो है। पपीहा मेघोंको देखकर ही मुग्ध हो जाया करता है। भगवद्विषयक चर्चा किसीके पास सुनी तो हम सुनकर ही मुग्ध हो जायँ। भगवान्‌के कीर्तनकी, भगवान्‌के गानकी कहींसे कोई ध्वनि कानमें आ जाय तो हम इतने मुग्ध हो जायँ कि बेहोश हो जायँ। यह स्थिति न हो तो कम-से-कम वे शब्द कानोंको अमृतके समान प्रिय लगें, जहाँ नेत्र जायँ भगवान् ही दीखें। भगवान् हैं, हमको नहीं दीखते

प्रवचन-दिनांक—११-८-१९३९, गोरखपुर।

तो भी मान लें। महात्मालोग कहते हैं कि भगवान् प्रत्यक्ष हैं, उनकी बातको हम मान लें, मनसे देखने लगें। फिर बुद्धिसे देखने लगें, निश्चय कर लें। आगे जाकर फिर नेत्रोंसे भी दीखने लगेंगे।

वाणीसे भगवान्‌की ही बात करनी चाहिये। हमारी वाणीकी सारी क्रियामें भगवान्‌को जोड़ लें। '**मां अप्राप्य**' कहनेका भाव यह है कि मेरी प्राप्तिका अधिकार इनको मैंने दिया था, तब भी आज मुझे इन्हें कैदमें डालना पड़ता है। भगवान् पश्चात्ताप-सा करते हैं कि जिसे मैं राज्य देनेवाला था, उसने ही राज्यमें विद्रोह फैला दिया और उसको आज कैदमें डालना पड़ रहा है।

भगवत्प्राप्ति सहज है

महात्मा बनना चाहिये, कहलाना नहीं चाहिये। महात्मा कहलानेवाले सौ लोगोंमें दस भी शायद ही सच्चे मिलें। अपने आपको महात्मा माननेवाले हजारों मिलेंगे, यह बाबाजीकी झोलीमें जेवड़ा (बंधनकी रस्सी) है।

अच्छे पुरुष साधक हों या सिद्ध। संन्यासीको रुपयोंसे सम्बन्ध बिल्कुल नहीं रखना चाहिये। गृहस्थके लिये भी सेवाका काम पड़ जाय तो सबके साथ साधारण आदमीकी तरह व्यवहार करें। रुपया, पैसा इकट्ठा करना आदि नीचे दर्जेकी बात मालूम देती है। भगवद्विषयमें तो रुपयोंका सम्बन्ध ही न हो।

यहाँ जितनी इज्जत बढ़ावेंगे उतनी ही परमात्माके घर घटेगी। यहाँ जितनी घटेगी वहाँ उतनी ही बढ़ेगी। ईश्वरके घर इज्जत होना ही वास्तवमें इज्जत है। बात सुनकर भी आपलोग इज्जत तो चाहते ही हैं।

आप खयाल करें तो हमारी बात उटपटांग नहीं है। वास्तवमें मनुष्य अपना हित चाहे तो आत्माका कल्याण होनेमें बहुत समयकी आवश्यकता नहीं है। रुपयोंके लिये मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा सब कुछ छोड़ देते हैं।

संसारका त्याग और भगवान्‌में प्रेम दो ही बात हैं। हठसे भी कर सकते हैं। नामका जप और संसारसे वृत्ति हटाना—इसके लिये उपरामता एवं वैराग्यकी आवश्यकता है। भले ही विवेकके द्वारा हो या हठसे जबरदस्ती हो।

अटलध्यान, भगवत्स्मरण, नामजप करते रहना चाहिये।

प्रवचन-दिनांक—१२-८-१९३९, गोरखपुर।

नामजप हठसे, स्वाँससे एवं उच्चारण करते हुए भी हो सकता है। प्रयत्न साध्य भी नहीं करते तो भगवान् यह कहते हैं—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्‌गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥

(गीता १८। ६३)

इस प्रकार यह गोपनीयसे भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझसे कह दिया। अब तू इस रहस्ययुक्त ज्ञानको पूर्णतया भलीभाँति विचारकर, जैसे चाहता है वैसे ही कर।

तुम्हारी जो इच्छा हो वह करो। हरदम वैराग्यके नशेमें चूर रहे, त्रिलोकीके ऐश्वर्यको भी लात मार दे। भगवत्प्राप्तिके लिये हरदम जोश रखना चाहिये।

यह सहजमें ही हो सकता है। काम-क्रोधादि आ ही नहीं सकते। प्रत्यक्षमें लाभ है, जब लाभका ही काम करेंगे तो हानिके निकट भी नहीं जायँगे।

प्रश्न—इन्द्रियाँ जबरदस्ती ढकेल देती हैं, क्या करें?

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

(गीता २। ६०)

हे अर्जुन! आसक्तिका नाश न होनेके कारण ये प्रमथनस्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुषके मनको भी बलात् हर लेती हैं।

उत्तर—प्रयत्न ढीला है। यत्नशील नहीं हैं। यह कभी नहीं समझना चाहिये कि यह काम कठिन है। असम्भव तो अपने कोशमें रखना ही नहीं चाहिये। तेज जोशके साथ साधन करें। इन्द्रियाँ, मन कुछ भी नहीं चलें। दो ही बातें रहें वैराग्य और

ध्यान। वैराग्यसे विचरे, फिर कुछ कठिन नहीं है। वैराग्य और उपरामता बड़ी बढ़िया है। नहीं तो हठसे ही वैराग्यका स्वांग ही लावें, बस प्रसन्नता एवं शान्ति छायाकी तरह लगी ही रहेगी। विषय हेय हैं यह समझमें आ जानेपर समझदार विवेकशील इनमें नहीं रमता।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

निश्चिन्त होकर विचरे। प्रत्यक्ष आनन्द है। प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। शीघ्र ही यह अवस्था हो सकती है।

भक्ति, भक्तके लक्षण

प्रश्न—राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई॥ आदि चौपाइयोंसे पता चलता है कि रामकृपा नहीं है, तब मनुष्यका क्या दोष है?

उत्तर—रामकृपा सबपर है, कृपा हम मानते नहीं हैं, इसीलिये लाभ नहीं उठा सकते। पारस तो हमारे घरमें पड़ा है न जाननेसे लाभ नहीं उठा पाते। हम जिस दिन मान लें कि रामकृपा हमपर है उसी दिन हमको लाभ हो जायगा। सत्संगके द्वारा हमारे अन्तःकरणके शुद्ध होनेपर या किसी तरह रामकृपाको जान लेनेपर उसी समय लाभ होगा। हमारे घरमें पड़े हुए पारसको महात्माने लोहेका सोना बनाकर समझा दिया, हम धनी हो गये। भगवान्‌की अपार कृपा है। यह बात सुननेपर भी विश्वास नहीं होता, इसका कारण अन्तःकरण शुद्ध न होना है। निष्काम सेवा, सत्संग, स्वार्थ छोड़कर कर्म करनेसे, भगवान्‌की शरण होनेसे, भगवान्‌के भजनसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। तब वह कृपा फलीभूत हो जाती है। कृपा तो है ही, हम नहीं मानते तबतक वह फलित नहीं होती।

प्रश्न—भक्तिके ऊपर कुछ कहिये, भक्तिके भेद बताइये?

उत्तर—श्रीमद्भागवतमें भक्तिके नौ भेद बतलाये गये हैं। गीतामें कहीं चार, कहीं छः बतलाये गये हैं। रामायणमें शबरीके प्रति भगवान्‌ने भक्तिके नौ भेद बतलाये हैं। सिद्धान्त सबका एक है। प्रणालीमें भेद है। कहनेकी शैली अलग-अलग है, फल एक है।

प्रवचन-दिनांक—१३-८-१९३९, गोरखपुर।

प्रश्न—जीवन्मुक्त पुरुष लोगोंपर व्यवहार-कालमें कैसे कृपा, कोप या शासन करते हैं, उनके इस व्यवहारका हेतु क्या है, जिसपर अनुग्रह या शासन करते हैं, उसको क्या समझते हैं? अपना ही स्वरूप समझकर करते हैं तो कैसे, पर समझते हैं तो कैसे समझते हैं, उनकी दृष्टि कैसी है? शरीरके साथ उनका क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—सच्ची बात तो यह है कि महात्माओंकी क्रिया वास्तवमें जानी नहीं जा सकती। महात्मा किस उद्देश्यसे करते हैं इसको महात्मा ही जानते हैं और महात्मा होनेपर ही यह बात जानी जा सकती है। वास्तवमें ईश्वरकी क्रिया और महात्माओंकी क्रिया वे ही जानते हैं। फिर भी आपने पूछा है तो कुछ उत्तर दिया जाता है।

महात्माओंका किसी भी क्रियामें निजका कोई हेतु रहता ही नहीं। शरीरका हेतु केवल मात्र प्रारब्ध रहता है। अवश्य भोक्तव्य भोग शरीरके द्वारा भोगा जाता है। यद्यपि उसमें कोई भोक्ता नहीं रहता। देखनेमें तो वह कभी हँसता, कभी बीमार होता, कभी इलाज करवाता है, शीतोष्णका ज्ञान उसको रहता ही है। दुर्गन्ध-सुगन्ध, खट्टी-मीठी-खारी, निन्दा-स्तुति सबकी परीक्षा तो होती है। इन्द्रियोंका काम तो होता ही है। अंत:करणमें हर्ष-शोक, राग-द्वेष ये विकार नहीं रहते। किसीपर अनुग्रह आदि किस हेतुसे होते हैं? जिसपर होते हैं उसका प्रारब्ध है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥

(गीता ३।१८)

उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है। तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता।

महात्माका अपना प्रयोजन तो रहता नहीं। उसके लिये न कोई ग्रहण है न कोई त्याग। **तस्य कार्यं न विद्यते।** (३। १७) उसके लिये कर्तव्य नहीं है, पर यह नहीं कहा जा सकता है कि उसके द्वारा कोई क्रिया नहीं होनी चाहिये। नहीं करता है तो यह भी नहीं कि होनी चाहिये। होती है तो किस हेतुसे? भगवान् स्वयं कहते हैं—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

(गीता ३। २२)

हे अर्जुन! मुझे इन तीनों लोकोंमें न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करनेयोग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्ममें ही बरतता हूँ।

भगवान्‌को भी कोई कर्तव्य नहीं है पर उनके द्वारा भी कर्म होते हैं। महात्माओंसे कर्म क्यों होते हैं—

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

(गीता ३। ३३)

सभी प्राणी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभावके परवश हुए कर्म करते हैं। ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है। फिर इसमें किसीका हठ क्या करेगा।

हेतु दिखलाते हैं स्वभाव, प्रकृति। ज्ञानवानोंकी भी प्रकृति

भिन्न-भिन्न होती है। एक हेतु तो प्रारब्ध है, सबके प्रारब्धका भोग एक-सा नहीं होता। पूर्व जन्मानुसार सबका प्रारब्ध अलग-अलग है। दूसरी बात—कोई भक्तिमार्गसे, कोई ज्ञानमार्गसे, कोई योगमार्गसे महात्मा बनता है। जिस साधनसे वह महात्मा बनता है वैसा ही उसका स्वभाव बन जाता है।

प्रारब्धका भोग भी तीन प्रकारसे होता है—स्वेच्छा, परेच्छा और अनिच्छा। उदाहरण एक भाईको रुपया मिलनेवाला है तीनों प्रकारसे मिल सकता है। ऐसे ही दुःख भी तीनों प्रकारसे होता है—

अनिच्छा—बिजली गिर गयी, किसीकी इच्छा न होते हुए भी कष्ट हुआ।

परेच्छा—डाकू घरमें आये, धनके लिये कष्ट दिया।

स्वेच्छा—हमारा पेट दुःखता है, हमने सेक किया परिणाम उलटा हुआ, दर्द बढ़ गया। स्वेच्छासे भोग हुआ।

इसी प्रकार सुखका भोग भी तीनों प्रकारसे होता है—

अनिच्छा—हमारा गहना, मकान आदि चीजें हैं उनकी कीमत बढ़ गयी। पाँच रुपयेकी चीजका पचास रुपये हो गया किसीने इच्छा नहीं की।

परेच्छा—एक धनी व्यक्तिने हमें गोद ले लिया।

स्वेच्छा—हमारी चेष्टाके परिणामस्वरूप हमें सुखकी प्राप्ति हुई। सभी प्रकारसे प्रारब्धका भोग होता है।

ज्ञानीके लिये भी इसी प्रकार अनिच्छा, परेच्छाके भोग तो अपने आप हो जाते हैं। स्वेच्छासे होनेवाले भोगके लिये चेष्टा होती है, क्रिया करनी पड़ती है।

ज्ञानीके द्वारा दूसरोंके श्रद्धा, प्रेम और प्रारब्धसे भी क्रिया हो जाती है। पाँच आदमी आ गये, व्याख्यान हो गया, अच्छी बातें हुईं, हेतु उनकी श्रद्धा, प्रेम और प्रारब्ध ही है।

ज्ञानी महात्मामें राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि होते ही नहीं। जो देखनेमें आते हैं वह नाटककी तरह हैं। नाटकमें नटके द्वारा क्रोध, दण्ड, अनुग्रह सभी कुछ होता है। वास्तवमें वह समझता है कि यह सब कुछ भी नहीं है, राजा सेवक सब आरोपित हैं, अभिनय हो रहा है। ऐसे ही ज्ञानी महात्मामें भी नाटककी दृष्टिकी कल्पना करनी पड़ती है। वास्तवमें वहाँ कोई दृष्टि है ही नहीं, पर समझानेके लिये यह कल्पना करनी पड़ती है। बाजीगर लोगोंको जादू दिखलाता है। रुपया दूना करके दिखा देता है, पर वास्तवमें यदि वह रुपया दूना कर सकता तो माँगता क्यों, यह तो खेलमात्र ही है।

ज्ञानीमें कोई अभिमानी नहीं है, समझनेवाला नहीं है, पर समझानेके लिये कहा जाता है कि उसकी दृष्टिमें संसार स्वप्नवत्, नाटकवत् है। स्वप्नवत्में अंतर यह है कि स्वप्न बीत गया, पर ज्ञानी वर्तमानमें भी स्वप्न ही समझता है। नाटकका उदाहरण ठीक समझमें आता है, क्योंकि नाटक हो रहा है। एक दृष्टान्त—स्वप्न आ रहा है कि लड़कीका विवाह है। वर बैठा है देवताओंकी पूजा हो रही है। इतनेमें ही जग गया, फिर सो गया कि अभी तो रात ही है और पुनः स्वप्नमें विवाहका काम जल्दी पूरा करता है। वर-वधूको विदा कर देता है। इसी प्रकार जागते हुए भी ज्ञानी महात्मा स्वप्न समझकर उसका काम पूरा कर देता है। काम-क्रोध सबका समयानुसार व्यवहार करते हुए भी वास्तवमें उसमें नहीं होते। कोप-अनुग्रह सभी क्रियाओंमें लोगोंका हित ही है। जैसे माँ, गुरु, सच्चे राजा आदिके द्वारा मारने, शिक्षा

देने तथा दण्ड देनेमें भी उनकी दया ही भरी रहती है। ऐसे ही महात्माकी सारी क्रिया हमलोगोंके हितके लिये ही होती है।

महात्माकी दृष्टिमें कोई भेदबुद्धि नहीं होती। उसकी दृष्टिमें यह बात नहीं होती कि वह ज्ञानी और हम अज्ञानी हैं। वहाँ तो भेददृष्टि नहीं है। हमलोगोंकी दृष्टिमें वे ज्ञानी हैं। महात्माकी तो सबमें समबुद्धि होती है।

जैसे स्वप्नमें हम विचर रहे हैं, हमारा निजी देह भी है, बाघ, भालू आदि भी हैं। उनको देखकर हमारा देह भागता है, इतनेमें आँख खुल गयी, हम देखते हैं सब हमारा ही संकल्प था। जो कुछ था, सब मैं ही था या कुछ नहीं था। स्वप्नकालमें ही भेदबुद्धि थी, जागनेपर यह भेदबुद्धि नहीं रहती कि मैं और अन्य पदार्थ कोई अलग-अलग वस्तुके थे। या तो कुछ नहीं था या सब कुछ मैं ही था। जागनेपर भेदबुद्धि नहीं रहती। इसी प्रकार ज्ञानी, महात्मा जागे हुए हैं। उनकी दृष्टिमें या तो कुछ नहीं है, या वे स्वयं ही हैं। भेदबुद्धि नहीं है।

व्यवहारमें भेद कैसे होता है। किसीपर कोप कैसे करता है। हमारी अंगुलीमें जहर चढ़ गया, यदि उसको काट दिया जाय तो बाकी शरीरमें नहीं चढ़ेगा, अतः बाकी शरीरके हितके लिये अंगुली काट दी जाती है, ऐसे ही यदि कोई राजा ज्ञानी, महात्मा होता है तो अपने ही स्वरूप चोर-डाकूको दण्ड देता है। जहाँ अनुग्रहकी आवश्यकता होती है, वहाँ अनुग्रह करता है कोपके स्थानपर कोप करता है। लोगोंको यह कोप एवं अनुग्रहकी क्रिया दीखती है। वास्तवमें तो ज्ञानीकी दृष्टिमें सृष्टि ही नहीं है। यह सब केवल समझानेके लिये है।

जो महात्मा जिस मार्गसे परमात्माको प्राप्त होते हैं, वह उसी

मार्गका लोगोंको उपदेश करते हैं, ज्ञान, भक्ति, योग सब अलग-अलग होते हुए भी एक ही स्थानपर पहुँचा देते हैं। मार्ग बतलानेवाला और मार्ग ठीक होने चाहिये। देखनेमें भिन्न-भिन्न प्रतीत होनेपर भी सभी एक ही स्थानपर पहुँचा देते हैं। यहाँसे अमेरिका जाना है, केवल पूर्व चलने वाला भी पहुँच जाता है। केवल पश्चिम चलने वाला भी पहुँच जाता है। कभी उत्तर, कभी दक्षिण, कभी पूर्व, कभी पश्चिम या एक ही स्थानपर जो डावाँडोल, अनिश्चयात्मक, संशयात्मक चलता है वह नहीं पहुँचता, ठीक रास्तेपर चलनेवाला पहुँच जाता है। अब भक्तिके प्रश्नका उत्तर देते हैं।

भक्ति शब्दकी उत्पत्ति भज्-धातुसे हुई है। **भज् सेवायाम्** भज्से तात्पर्य सेवासे है, सेवा भजन भी है। जैसे योगका अर्थ पतंजलिने **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः** चित्तवृत्तियोंका निरोध योग है, ऐसा माना है। धातुसे तो योगका अर्थ जुड़ना होता है। ऐसे ही भक्तिका पारिभाषिक अर्थ महर्षि शाण्डिल्यने माना है-**सा परानुरक्तिरीश्वरे** (शाण्डिल्यभक्ति-सूत्र १। १। २) अर्थात् ईश्वरमें परम प्रेम भक्ति है। एक कहते हैं—जिसकी विस्मृतिमें मरण हो जाय, उसका नाम भक्ति है।

गीतामें भगवान्‌ने भक्तिका अर्थ दूसरी प्रकारसे किया है। भगवान् कहते हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११। ५४)

हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्यभक्तिके द्वारा तो इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।

भक्ति क्या है? भगवान् कहते हैं—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११। ५५)

हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मोंको करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है—वह अनन्यभक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

भगवान्‌ने गीताके अध्याय बारहमें श्लोक १३ से १९ तक भक्तोंके लक्षण बतलाये हैं। वे लक्षण जिनमें हों वे भक्त हैं। उन लक्षणोंका समुदाय भक्ति है।

भगवान् कहते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

प्रेमपूर्वक भजना भक्ति है—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०। ९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें निरन्तर रमण करते हैं।

जिनका चित्त मेरेमें वास करता है, जिनका जीवन वास्तवमें

मेरे लिये ही है, सारी इन्द्रियोंके द्वारा जो मेरी भक्ति, उपासना करते हैं; खाना-पीना, सोना-चलना सब परमात्माके लिये है तथा एक-दूसरेको परमात्माका तत्त्व समझाते हैं, मेरी कथा करते हैं, नामजप करते हैं, कथन करते हैं, इन सब बातोंसे सन्तुष्ट होते हैं, सारी इन्द्रियोंके द्वारा मेरेमें रमण करते हैं। ऐसे पुरुषोंको मैं बुद्धियोग देता हूँ। भगवान्‌को प्रत्यक्ष मानकर उनमें जो रमण करता है, उनकी भक्ति और उनमें प्रेम करता है, उसको भगवान् बुद्धियोग देते हैं, यह गीतोक्त भक्ति है।

भागवतमें प्रह्लाद अपने पिताको नवधा-भक्ति बतलाते हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

१. श्रवण—भगवान्‌के गुण, प्रभाव, प्रेम, तत्त्व, रहस्य, लीला, धाम, नाम, चरित्र आदिका श्रवण करना।

२. कीर्तन—इन सबका कीर्तन करना।

३. स्मरण—इन सबका स्मरण करना।

४. पादसेवन—भगवान्‌की सेवा-शुश्रूषा करना। हनुमान्‌जी, भरतजी, लक्ष्मीजी आदि पादसेवनके उदाहरण हैं।

५. अर्चन—मन्दिरमें, मनमें, चित्रपटमें, सारे विश्वको भगवान्‌का स्वरूप मानकर सब प्रकारसे पूजा करना।

६. वन्दन—मन्दिरमें तथा सारे जगत्‌में भगवान्‌को देखते हुए प्रणाम करना।

सीयराम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

भगवान्‌का स्वरूप बड़ा विलक्षण है—

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।

भगवान्‌के सब जगह चरण हैं, सब जगह कान हैं, सब जगह नेत्र हैं। हमारी तरह दो कान, दो नेत्र, दो चरण नहीं हैं, सब जगह हैं। तब हम मन्दिरमें क्यों जायँ? यहाँ तुमको नहीं दीखते, वहाँ प्रत्यक्ष दीखते हैं, प्रेमसे पूजा करो। हमको तो यहाँ भी भगवान्‌के चरण दीखते हैं तो फिर हमारा कोई आग्रह नहीं कि मन्दिरमें ही जाओ, तुमको सब जगह दीखते हैं तो ठीक है। असली नाम, असली रूप बतलाओ। भगवान्‌के सभी नाम-रूप असली हैं। ॐ, राम, कृष्ण, अल्लाह, खुदा सभी उनके ही नाम तो हैं। अनन्त नाम हैं। यह तो ठीक है, स्वरूप बतलायें। कोई सर्वत्र, कोई आसमानमें, कोई साकार, कोई निराकार, कोई वैकुण्ठ, कोई साकेत, कोई गोलोकमें, कोई हृदयमें बताते हैं, कौन-सा ठीक है? सभी ठीक हैं। तभी तो भगवान् हैं। किसी स्वरूपको पकड़कर चलो वहाँ पहुँच जाओगे। उसको प्राप्त कर लोगे। वास्तवमें तो वह प्राप्त होनेपर ही पता लगेगा। उनको प्राप्त करनेवाले भी इनके बारेमें समझा नहीं सकते। स्वर्गसे कोई आकर हमें अमृत नहीं समझा सकता। पृथ्वीके गर्भके किसी लोकमें जहाँ सूर्य कभी नहीं उगता, वहाँ जाकर हम सूर्यको नहीं समझा सकते। वहाँके किसी आदमीको हम यहाँ लाकर ही सूर्यको समझा सकते हैं, लेकिन वह समझ जानेवाला भी वहाँ जाकर नहीं समझा सकता। वास्तविक वस्तु देखनेपर ही समझी जा सकती है। जब हम इतनी मोटी चीजको

नहीं समझा सकते, तब भगवान्‌को कैसे समझावें? भगवान् हमारी उपासना पद्धतिको स्वीकार करते हैं। वे कृपा करके प्राप्त होते हैं। तभी वास्तवमें समझमें आता है।

७-दास्य—स्वामी सेवकका उदाहरण समझानेके लिये दिया जाता है, वास्तवमें तो भगवान्‌के साथका स्वामी-सेवकभाव बहुत ही विलक्षण है। सेवा मिल जानेपर कंगालको पारस मिलनेपर जो मुग्धता होती है उससे भी विशेष मुग्धता होती है।

८-सख्य—भगवान्‌को अपना सखा मानकर उपासना करना।

९-आत्मनिवेदन—अपने आपको भगवान्‌के अर्पण कर देना। गोपियाँ, राजा बलिकी तरह अपने आपको अपने अधिकारके सारे पदार्थोंको भगवान्‌के अर्पण कर देना। स्वयं अर्पण हो गया तो अपनी चीजें तो अर्पण हो ही गयीं।

इन नौमेंसे एकको भी धारण कर ले तो भगवान् मिल जायँ। सब गुण आ जायँ, तब तो देर ही क्या है? कुछ उदाहरण बतलाये जाते हैं—

श्रवण—परीक्षित्।

कीर्तन—नारद, शुकदेव, गोकर्ण।

स्मरण—ध्रुव (साढ़े पाँच महीनेमें भगवान् मिल गये)।

पादसेवन—जगज्जननी सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी, भरतजी।

अर्चन—राजा पृथु। बहुत-से ऋषि यही करके तर गये। गजेन्द्रने पुष्प दिया, शबरीने बेरोंसे पूजा की, विदुरजीकी स्त्रीने शाक भोजन कराया। रन्तिदेवने सारे विश्वमें दुःखियोंकी पूजा की, तर गये।

वन्दन—अक्रूर, भीष्मपितामह।

दास्य—हनुमान्‌जी, सूरदासजी, तुलसीदासजी, प्रभु हमारे स्वामी हैं और हम सेवक हैं—यह भाव कभी न जाय।

सख्य—अर्जुन, उद्धव, सुग्रीव, गोप-बालक इत्यादि।

आत्मनिवेदन—राजा बलि।

गीतामें बहुत प्रमाण मिलते हैं—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

परन्तु इनसे दूसरे, अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् उनको जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसन्देह तर जाते हैं।

ऐसे मूढ़ जाननेवाले पुरुषोंकी शरण होकर सुननेके परायण होकर तर जाते हैं।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

तुलसीदासजीने सत्संगकी खूब महिमा गायी है।

नामस्मरण और नामजप—सब कीर्तनके अन्तर्गत हैं। भागवतमें कहते हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

हे नारद! मैं न तो वैकुण्ठमें रहता हूँ और न योगियोंके हृदयमें रहता हूँ। मेरे भक्त जहाँ कीर्तन करते हैं मैं वहीं रहता हूँ।

तुलसीदासजी कहते हैं—

जबहिं नाम हिरदे धर्‍यो भयो पापको नास।
मानो चिनगी अग्निकी परी पुराने घास॥

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ॥

गीतामें भी भगवान् कहते हैं—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥

(गीता ९। १४)

वे दृढ़ निश्चयवाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करते हुए और मुझको बार-बार प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यानमें युक्त होकर अनन्य प्रेमसे मेरी उपासना करते हैं।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः॥

(गीता १०। २५)

सब प्रकारके यज्ञोंमें जपयज्ञ और स्थिर रहनेवालोंमें हिमालय पर्वत हूँ।

ध्यानसे भी स्मरण—

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥

(गीता १३। २४)

उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म-बुद्धिसे

ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं; अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

जिनका ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, मरुद्गण दिव्य स्तुतियोंके द्वारा स्तवन करते हैं, वेद, उपनिषद् और क्रमादिक पाठोंके द्वारा सामगान करनेवाले जिनका गान करते हैं। योगीजन ध्यानमें स्थित होकर तद्गत मनके द्वारा जिनका दर्शन करते हैं, जिनका अन्त देवता, असुरगण भी नहीं जानते उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है।

गीताके सात सौ श्लोकोंमेंसे सौ श्लोक ध्यानके मिल सकते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर

मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

केवल चिन्तन करना है और कोई शर्त नहीं है। पादसेवनके उदाहरण भागवत, रामायण, महाभारतमें सब जगह मिलते हैं। रामायणमें—**पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।**

भरतजीने चरण पादुका माँग ली, मस्तकपर धारण करके करुणाभावसे विह्वल होते हुए ले आये, चौदह सालतक उन्हींकी पूजा की।

शंकराचार्यजी प्रश्नोत्तरीमें संसारसे पार जानेका उपाय बतलाते हैं—**विश्वेशपादाम्बुज दीर्घनौका।** संसार-सागरसे पार जानेके लिये भगवान्‌के चरणकमलरूपी जहाज ही आधार हैं।

अर्चन—पूजा करनेसे भी भगवत्प्राप्ति हो जाती है। पूजाके कुछ प्रकार बतलाये जाते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाते हैं।

वन्दन—प्रणाम करनेमात्रसे प्रभुकी प्राप्ति हो जाती है—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

भगवान् कृष्णको एक बार भी प्रणाम किया जाय तो वह दस अश्वमेध-यज्ञके अवभृथ-स्नानके तुल्य होता है। दस अश्वमेध-यज्ञ करनेवालेका पुनर्जन्म हो सकता है; किन्तु भगवान् कृष्णको प्रणाम करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता।

श्रद्धा-प्रेमकी कमीसे फलमें तारतम्यता हो जाती है। विश्वास बिना हुए वस्तु मिलकर भी नहीं मिलेके समान है। दुर्योधनकी सभामें भगवान्‌ने विराट्‌रूप धारण किया, पर दुर्योधनने विश्वास नहीं किया तो मिलकर भी नहीं मिलेके समान थे। ऐसे ही एक महात्मा मिले, हमने नहीं पहचाना तो थोड़ा लाभ हुआ, फिर भी महात्माका मिलना अमोघ होता है।

दास्य—**सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।**

गीतामें भगवान् कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥

(गीता ९। १५)

दूसरे ज्ञानयोगी मुझ निर्गुण-निराकार ब्रह्मका ज्ञानयज्ञके द्वारा अभिन्नभावसे पूजन करते हुए भी मेरी उपासना करते हैं, और दूसरे मनुष्य बहुत प्रकारसे स्थित मुझ विराट्स्वरूप परमेश्वरकी पृथक् भावसे उपासना करते हैं। रामचरितमानसमें भगवान् कहते हैं—

सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ।

मद्भक्ता यान्ति मामपि॥ (गीता ७। २३)

मेरे भक्त मुझे ही प्राप्त होते हैं।

सख्य—इसके जगह-जगह प्रमाण हैं। उद्धव तर गये। भगवान् कहते हैं तू मेरा अतिशय प्यारा है, मित्र है, सखा है। गोपियोंकी जगह-जगह प्रशंसा करते हैं—वे मुझको बेच सकती थीं, मेरी सखियाँ थीं।

आत्मनिवेदन—इसके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा।

उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम-धामको प्राप्त होगा।

सारे कर्म अर्पण कर दे। अपने आपको अर्पण कर दे। अपना सर्वस्व अर्पण कर दे। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—**ईश्वर प्रणिधानाद्वा।** (पातञ्जलयोगप्रदीप, समाधिपाद २३) भगवान्‌के नामका जप एवं उनका ध्यान करनेसे शीघ्र ही उनकी प्राप्ति होती है।

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम्॥

मनुष्य भगवान् वासुदेवके शरणागत होकर एवं उनके परायण होकर सारे पापोंसे मुक्त होकर सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

नवधा भक्तिके नौ अंग हैं। अंगकी तो बात ही क्या, उपांग भी धारण करनेसे कल्याण हो जाता है।

कीर्तनका एक अंग—केवल जप ही करता रहे तो उद्धार हो जाय। चाहे कथा ही करता रहे, स्तुति ही करे, कीर्तन ही करे किसी एक उपांगको धारण कर ले तो उद्धार हो जाय।

पूजा—एक ही अंग केवल जल ही, केवल पुष्प ही अर्पण कर दे। गजेन्द्रपर केवल पुष्पसे प्रसन्न हो गये, शबरीपर केवल बेरसे ही प्रसन्न हो गये, रन्तिदेवपर केवल जलसे ही प्रसन्न हो गये, द्रौपदीपर केवल पत्रसे प्रसन्न हो गये। एक अंग मुख्य आनेपर गौणरूपसे सब आ जाते हैं। भरतमें मुख्य अंग पादसेवन है, परन्तु सभी अंग मिलेंगे।

भरतजी हनुमान्‌जीके वचन सुनकर कितने प्रसन्न हुए—

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥

कीर्तन-**राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात।**

स्मरण—भगवान् जब समयपर नहीं आये, एक दिन बच

गया, तब भरतजी कहते हैं—

जन अवगुन प्रभु मान काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ।

अर्चन—नित्य पूजा करते हैं।

वन्दन—चित्रकूटमें साष्टांग प्रणाम करते हैं। वापस अयोध्या आनेपर भी साष्टांग प्रणाम करते हैं।

दास्य—कहते हैं मैं बालक हूँ, सेवक हूँ, आप स्वामी हैं।

सख्य—चित्रकूट गये, तब कहा पिताजीने जो दिया उसको हम दोनों आपसमें बदल लें, समानताकी बात स्वीकार कर ली।

आत्मनिवेदन—प्रभु जब वापस आये, तब सारा राज्य अर्पण कर दिया।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

सन्ध्योपासनकी विशेष महिमा

सन्ध्या नियमसे प्रातः और सायंकाल दोनों समय करनी चाहिये। सन्ध्या किये बिना भोजन नहीं करना चाहिये। प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व तारोंके दीखते हुए संध्या करना उत्तम, तारोंके लुप्त होनपर सूर्योदयसे पूर्व लालिमा रहते हुए सन्ध्या करना मध्यम तथा सूर्योदयके बाद करना कनिष्ठ है। इसी तरह सायं सन्ध्या सूर्यास्तके पूर्व करना उत्तम है। सूर्यास्तके बाद लालिमा रहते हुए सन्ध्या करना मध्यम है तथा तारोंके उदय होनेपर सन्ध्या करना कनिष्ठ है। इस बातका हमें नियम लेना चाहिये कि प्रातः सन्ध्या सूर्योदयके पूर्व एवं सायं सन्ध्या सूर्यास्तके पूर्व करूँगा, विलम्ब होनेपर उपवास करूँगा। समयका नियम लेनेसे सन्ध्याका नियम स्वतः ही आ जाता है। शास्त्रने छूट दी है कि समयका लोप हो जाय तो कोई आपत्ति नहीं, कर्मका लोप नहीं होना चाहिये। पर हम छूट क्यों लें, उत्तमपक्ष तो यही है कि समयपर सन्ध्या करें। इससे भी उत्तम प्रेमसे करें, बड़ी भारी श्रद्धा, प्रेममें मग्न होकर करें, यह समझें कि एक इसीसे अपना कल्याण है। इसका बड़ा भारी महत्त्व है।

जो आदमी नियमसे सन्ध्या करता है, उसे भगवत्प्राप्ति हो सकती है। निश्चय नहीं पर हो भी सकती है और जो समयसे करता है उसके लिये प्रायः ही होनेकी सम्भावना है और जो प्रेमसे करता है उसे निश्चय ही होती है तथा जो अनन्य प्रेमसे करता है उसे तो एक ही दिनमें हो जाती है। दुनियामें प्रेमसे बढ़कर दूसरी चीज नहीं है। प्रेमसे सब होता

प्रवचन-दिनांक २८-११-१९३७, गोरखपुर।

है इसलिये प्रेम ही बड़ी चीज है।

नियम और समयका इतना महत्व क्यों? प्रथम तो यह समझे कि सन्ध्योपासन क्या है? प्रातः सूर्योदयकी सन्धि तथा सूर्यास्तकी सन्धिके समय जो भक्ति की जाती है उसका नाम सन्ध्योपासना है। अत्यन्त निकट होकर उपासना की जाती है। प्रत्यक्ष पदार्थ दीखते हैं, देवता दीखते हैं। बृहस्पति आदि देवोंमें वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रत्यक्ष देवता हैं। इनमेंसे सर्वश्रेष्ठ सूर्य हैं। सूर्यसे बढ़कर प्रत्यक्ष देवता और कोई नहीं हैं। इसलिये सूर्यको प्रतिनिधि बनाकर ही ईश्वरकी उपासना की जाती है। कहीं सभा होती है तो जो श्रेष्ठ समझा जाता है उसीको प्रतिनिधि बनाया जाता है, न कि सेवकोंको भेजा जाता है। इसी तरह सूर्यको प्रतिनिधि बनाकर ईश्वरकी उपासना की जाती है। जैसे मन्दिरमें हम पाषाणकी मूर्तिको ईश्वरका प्रतिनिधि मानते हैं। इसी तरह सूर्यको माना है। परमेश्वर ही स्वयं सूर्यके रूपमें प्रकट हुए हैं। ऐसा श्रुति कहती है। सूर्य साक्षात् परमात्माके स्वरूप हैं। कम-से-कम यह तो मान ही लेना चाहिये कि संसारमें सबसे बढ़कर सूर्य हैं। महान् पुरुष देशके कल्याणके लिये हमारे ग्राममें आते हैं तो बहुत-से भाई लोग उनके सत्कारके लिये स्टेशन जाते हैं।

एक महात्मा व्याख्यान देते हैं, वह लोगोंके श्रद्धा-प्रेमके फलस्वरूप उनका संग करते हैं और उससे लाभ होता है। सत्संगका नया प्रारब्ध बन सकता है। संयोग होनेमें प्रारब्ध हेतु है पर सत्संग मिले इसमें श्रद्धा-प्रेम ही हेतु है। दार्शनिक बात है।

भगवान्‌के दर्शन दो प्रकारके होते हैं। एक वास्तवमें साक्षात्कार होता है, एक भक्तकी दृष्टिमें ही हुआ, पर वास्तवमें नहीं हुआ। कोई मनुष्य भगवान्‌से मिले, पर उस समय ज्ञान न रहा, भगवान्‌ने गलेमें माला पहनायी तो फिर माला होनी चाहिये। माला नहीं है तो वास्तवमें दर्शन नहीं हुए। जैसे ध्रुवको भगवान् वास्तवमें मिले, सब बातें सिद्ध हो गयी। प्रह्लादको मिले तो यथार्थमें मिले। भगवान्‌की सारी क्रिया सत् रहती है। भगवान्‌का साक्षात्कार होनेपर ऐसी स्थिति हो जाती है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे॥

(श्रीमद्भागवत १। २। २१)

हृदयमें आत्मस्वरूप भगवान्‌का साक्षात्कार होनेपर हृदयकी सारी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और कर्मबन्धन क्षीण हो जाता है।

सभी साधनोंमें श्रद्धाकी प्रधानता

गीताके मूल श्लोकोंका पाठ करनेवाला न करनेवालेकी अपेक्षा ठीक है, उससे वह मनुष्य श्रेष्ठ है जो गीताका अर्थसहित पाठ करता है। सात सौ श्लोकोंका पाठ करनेवालेकी अपेक्षा वह श्रेष्ठ है जो गीताके एक श्लोकको लक्ष्य बनाकर उसके अनुसार अनुष्ठान करता है। भाव, विचारसहित सारी गीताका पाठ करनेवालेसे एक श्लोकके अनुसार जीवन बनानेवाला श्रेष्ठ है।

गीतामें सत्यपालन, अहिंसा एवं वाणीके तपके लिये कहा है पर यदि उसे काममें न लावें तो काम थोड़े ही हो सकता है। जान तो गया पर काममें लाये बिना कुछ फल नहीं होता, जैसे हरीतकीका गुण जान तो लिया, पर खाये बिना बीमारी दूर नहीं हो सकती।

असली बात यह है श्रद्धा कैसे हो? श्रद्धा करने लायक हमको कोई मिला नहीं। श्रद्धाकी बात जैसी सुनते हैं, वैसी किसीकी भी शास्त्र, महात्मा, ईश्वर किसीमें नहीं है। श्रद्धा करनेकी देरी है काममें विलम्ब नहीं है, क्योंकि शास्त्र मिथ्या नहीं हैं। भगवान् अर्जुनको कहते हैं—

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥
ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः॥

(गीता ३। ३१-३२)

जो कोई मनुष्य दोषदृष्टिसे रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस मतका सदा अनुसरण करते हैं, वे भी सम्पूर्ण कर्मोंसे छूट जाते हैं। परन्तु जो मनुष्य मुझमें दोषारोपण करते हुए मेरे इस

प्रवचन-तिथि—आश्विन शुक्ल १४, संवत् १९९५, बाँकुड़ा

मतके अनुसार नहीं चलते हैं, उन मूर्खोंको तू सम्पूर्ण ज्ञानोंमें मोहित और नष्ट हुए ही समझ।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥

सारे कर्म मुझमें अर्पण करके आशा ममतासे रहित होकर युद्ध कर। तुम्हें श्रद्धासहित इसका पालन करना है। मुझमें कोई अवगुण न देख, नहीं तो श्रद्धा ठहरेगी नहीं। तेरे लिये गीता कही है पर दूसरे भी इसका पालन करेंगे तो उनका भी कल्याण हो जायगा। इससे सिद्ध हुआ कि हम अनुष्ठान करते ही नहीं। विधिकी आवश्यकता नहीं, श्रद्धाकी आवश्यकता है। मैं मिट्टी उठानेके लिये कहूँ, उठाओ तो इसमें श्रद्धाकी ही आवश्यकता है विधिकी नहीं। इतनी ही बातकी आवश्यकता है कि हमें इसमें लाभ है और किसी बातकी नहीं। करना नहीं चाहे तो श्रद्धाकी कमी है। चाहना होती है जाननेसे और जानते ही श्रद्धा हो जाती है। परम श्रद्धा होते ही एक मिनटका काम है—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(गीता १२। २)

मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं।

सब जगह पहले श्रद्धा रखी गयी है। भक्ति, ज्ञान सबमें श्रद्धाकी आवश्यकता है। आयुर्वेदमें भी श्रद्धासे ही काम होता है। वैद्यकी दवापर शंका करते हैं तो उससे लाभ नहीं होता है। श्रद्धासे मूर्ख व्यक्तिकी दी हुई औषधि भी काम कर देती है।

एक ब्राह्मण था। ब्राह्मणीने कहा कुछ कमाकर लाओ, ब्राह्मण

पढ़ा हुआ नहीं था। वह जाकर एक मन्दिरमें बैठ गया। संयोगसे एक धोबीका गधा खो गया था। वह खोजते हुए मन्दिरमें पहुँच गया। देखा पण्डितजी बैठे हैं। पण्डितजीसे पूछा, तब पंचांग देखकर बोला—आधा तोला धतूराका बीज पीसकर पी लो। धोबीने वैसा ही किया, उसे नशा हो गया। वह नशेमें घूम रहा था। संयोगसे गधा पकड़में आ गया, नशा उतरा तो देखा यह तो मेरा ही गधा है, बड़ी प्रसन्नता हुई। मनमें आयी पण्डितजी बड़े ऊँचे दर्जेके हैं, पण्डितजीको एक रुपया भेंट चढ़ाया। वह ब्राह्मणीको ले जाकर दे दिया। ब्राह्मणीने प्रसन्न होकर कहा—नित्य जाया करो। एक बनियेकी लाल (माणिक रत्न) घरमें नहीं मिल रही थी, बहुत खोजने पर नहीं मिली। उस बनियेकी इस धोबीसे भेंट हो गयी। धोबीने पण्डितजीकी बात बतलायी और बनियेको मन्दिरमें पण्डितजीके पास ले गया। पण्डितजी मन्दिरमें बैठे थे। पण्डितजी पंचांग देखने लगे। बनियेने कहा—यह पंचांग उलटा देख रहा है। धोबीने कहा—तुमको क्या पता, संतोंकी गति उलटी होती है, चुप रहो। पण्डितने कहा—आधा तोला धतूराका बीज पीसकर पी लो। बनियेने पण्डितजीको पाँच रुपये भेंट चढ़ायी। घर आकर बनियेने भी वैसे ही किया। बनियेको नशा हो गया, कमरेमें चक्कर काट रहा था। संयोगसे बनियेका हाथ आलमारीपर पड़ा, लाल वहाँ पड़ी थी। वह नीचे गद्देपर गिर गयी। जब बनियेको होश हुआ तो लाल गद्देपर पड़ी मिली। बनिया बड़ा प्रसन्न हुआ। मनमें आयी पण्डितजी बड़े ऊँचे दर्जेके हैं। बात फैलते-फैलते राजाके पास पहुँच गयी। राजाने पण्डितजीके पास बुलावा भेजा। पण्डितजीने सोचा, अब मुश्किल है ऐसा उपाय किया जाय कि कोई बुलाये ही नहीं। पण्डितजी घरसे जूता हाथमें लेकर दौड़ते हुए ही गये। रास्ता

तो साफ था ही, जाते ही राजाके माथेपर जूता मारा। राजाका साफा नीचे गिर गया, उसमेंसे एक साँप निकला। लोगोंने कहा—राजा साहब आपके प्राण बच गये। यह पण्डितजी घरसे निकलते ही दौड़ते हुए सीधे आपके पास आये, कहीं रास्तेमें रुके नहीं। एक मिनट देरी हो जाती तो सर्प काट लेता। पण्डितजी बहुत ऊँचे दर्जेके हैं, इनको पहले मालूम हो गया तभी दौड़ते हुए आये, आपके प्राण बचा लिये। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। पण्डितजीको बहुत धन दिया, सारी व्यवस्था कर दी। यह श्रद्धाकी बात है। श्रद्धा होनेपर मूर्ख भी परमेश्वर है, नहीं तो विद्वान् भी कुछ नहीं। मूर्खकी क्रिया श्रद्धाके कारण अच्छी हो गयी। यह श्रद्धाकी बात है। महात्मामें दम नहीं है, महामूर्ख है, पर श्रद्धा खूब फलदायी हुई।

बीकानेरसे एक बनजारा बैलोंपर मेट लादकर दिल्ली जा रहा था। रास्तेमें मेट बिकती गयी तो बदलेमें राजस्थानकी बालू भर लेता। रास्तेमें एक बनिया मिला, बोला—बैलोंको क्यों बोझा मारते हो। ज्यों मेट बिकती है, तुम बोझको बराबर करनेके लिये बदलेमें बालू भर लेते हो। ऐसा न करके मेटको आधा-आधा दोनों तरफ करके बराबर कर लिया करो, बैल भी हलके हो जायँगे। बनजारेने कहा—तुम बात तो ठीक कहते हो, तुम कहाँसे आये हो? दिल्लीसे, वहाँ क्यों गये थे? कहा—व्यापार करने गया था। वापस क्यों जा रहे हो? कहा—जो काम किया, घाटा लगा उसमें सफलता नहीं मिली। तब बनजारेने कहा—तुम्हारी बुद्धि तो तेज है पर परिणाम अच्छा नहीं है, तुम्हारी बुद्धि फलवती नहीं है, अतः हम जो करते हैं वही ठीक है।

बनजारा दिल्ली जाकर बाजारमें मेट और बालूकी दूकान लगाकर बैठ गया। वहाँके बादशाहको कोई रोग हो गया। हकीमने कहा—राजस्थानकी बालू मिले तो इलाज हो सकता है

जो कि दिल्लीमें दुर्लभ थी। किसी सेवकने कहा—उसने बाजारमें राजस्थानकी बालू बिकते हुए देखी है। बनजारेकी बालू मुँहमाँगी कीमत पर बिक गयी। यदि वह बनियेकी बात मान लेता तो घाटेमें रहता।

जैसे उसकी बुद्धि तेज थी पर परिणाममें अच्छी नहीं थी। वैसे ही महात्मा बनजारा है और हम बनिया हैं। हमारी बुद्धि काम करती दीखती है और महात्माकी नहीं दीखती। पर उनकी बुद्धि काम करनेवाली है, इसलिये आगा-पीछा न सोचकर उनकी बात मानकर काम करना चाहिये।

श्रद्धाके कारण मूर्खताकी क्रिया ही काम कर गयी, उसी प्रकार महात्मा और शास्त्रकी आज्ञा माने। अपनी बुद्धिका कीचड़ न करे। नहीं तो सभी शास्त्रोंमें अश्रद्धा हो जायगी।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

श्रद्धा बिना न तो ज्ञान होगा और न भक्ति ही होगी। श्रद्धा बिना कुछ नहीं होता।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(गीता १७। २८)

हे अर्जुन! बिना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है—वह समस्त 'असत्'—इस प्रकार कहा जाता है; इसलिये वह न तो

इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।

बिना श्रद्धाके होमा हुआ हवन, किया हुआ तप, दिया हुआ दान सब असत्य है। श्रद्धाके बिना कर्मफल नहीं होता, ज्ञान नहीं होता, सभी कामोंमें श्रद्धाकी प्रधानता है। अत: श्रद्धाकी आवश्यकता है। श्रद्धा करनी चाहिये।

वर्तमानमें अपनी श्रद्धा रुपयेमें पाई* भर नहीं है। शास्त्रोंमें महात्माओंकी बात पढ़ी है, वृद्धोंसे उनकी कथा सुनी है। महात्माके दर्शनसे परमात्मा मिलें यह युक्तिसंगत है। शास्त्र कहते हैं कि महात्माके दर्शनसे भगवान्‌की प्राप्ति होती है।

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

इसमें सत्संग बिना प्राप्ति नहीं कही, महात्माके संगसे उद्धार बताया। कहीं-कहीं तो महात्माकी और भी विशेष बात कही है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

मुक्तिसे बढ़कर सत्संग बताया है। ऐसे पुरुषोंके संगसे कल्याण हो तो उसमें कहना ही क्या है? सत्संग उसका नाम है जो श्रद्धा-प्रेमसे किया जाय और उसकी बातका पालन किया जाय। श्रद्धाकी मात्रा अधिक हो तो सेवा, आज्ञा-पालनके बिना ही उनके संकेत-मात्रसे कल्याण हो सकता है। श्रद्धा विशेष होनी चाहिये। वह उनके संकेतपर प्राण देनेको तैयार रहेगा। श्रद्धा नहीं होगी तो आज्ञा भी नहीं मानेगा और कम होगी तो मार खानेपर भी नहीं करेगा। श्रद्धाकी यह पहचान है कि उनके संकेतमात्रपर प्राण-न्योछावर कर दे। श्रद्धा होनेपर श्रद्धालु श्रद्धेयके मनकी बात जान लेता है।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

---

* एक रुपयेमें १६ आने, एक आनेमें चार पैसे और एक पैसेमें तीन पाई होती थी।

समयको सार्थक करे

प्रश्न—पत्ते-पत्तेमें राम-राम लिखा हुआ है। इस प्रकारसे नामका चिन्तन कैसे हो?

उत्तर—यह सबसे बड़ा भगवान्‌का चिन्तन है। यह मानसिक जप है। मौखिक जपसे दस गुना उपांशु और उससे दस गुना मूल्यवान् मानसिक जप है। सौ वर्षका मौखिक जप एक वर्षके मानसिक जपके बराबर है। मानसिक संकल्पोंकी जगह भगवान्‌के नामका संकल्प करे तो मानसिक जप होगा। जैसे नटनी रस्सेपर चलते हुए कई प्रकारके तमाशे दिखाती है, किन्तु उसका ध्यान रस्सेपर ही रहता है। रस्सेपरसे ध्यान छूट जाय तो वह बेमौत मारी जाती है।

नटनीके गाने बजानेकी तरह संसारका काम करे। मुख्यवृत्ति भगवान्‌की ओर रहे तथा गौणीवृत्ति संसारकी ओर रहे।

समय भगवान्‌के अर्पण करे। बुद्धिसे भगवान्‌का निश्चय तथा मनसे जप करे, उससे ऊँचा काम नहीं है।

मनुष्य अपने शरीरके लिये जितना कम खर्च लगा सके उतना लगाना साधुता है। साधुकी तरह जितनी आवश्यकता कम कर दे उतना ही वैराग्य है। यह चादर जो मैंने ले रखी है, उसका दाम बारह आना है, यह तीन वर्ष चल जाती है, चार आना सालका पड़ा। वहीं पचहत्तर रुपयेकी गरम चादर भी मैं ले सकता हूँ, सौ गुना फर्क हो गया। उसकी इज्जत संसारी मनुष्योंमें एवं इसकी इज्जत ईश्वरके घरपर है, यदि वस्त्रसे साधुपना हो तो सबका वस्त्र रँगा दें। अपने शरीरके लिये कम खर्च करना

प्रवचन-तिथि—आश्विन शुक्ल १५, संवत् १९९५, बाँकुड़ा।

चाहिये। आराम, शौकीनी, भोग, स्वादकी जड़ काट देनी चाहिये।

व्यसन—भगवान्‌के ध्यानका करे, नशा—भगवान्‌के ध्यानका करे। ध्यानमें इतना मग्न हो जाय कि शरीर काट दे तो भी पता नहीं लगे।

दु:खी एवं पीड़ित मनुष्योंको आराम पहुँचाना सेवा है एवं उनको सदाके लिये मुक्त करना परम सेवा है। परम सेवा अपनी शक्तिके अनुसार सबको करनी चाहिये। उस सेवाके लायक योग्यता बनानेकी कोशिश करनी चाहिये। एक व्यक्ति व्याकरण जाननेवाला हजारों आदमियोंको भी पढ़ा सकता है। राजा जनक ऋषियोंकी कितनी सेवा करते थे। हमें परम सेवा करने लायक बनना चाहिये। दूसरोंको भगवान्‌की ओर लगाना भी भगवत्-प्राप्तिका साधन है। इसके बहुत प्रकार हैं। सिद्धान्त यह बना ले कि संसारमें भगवान्‌के प्रेम और श्रद्धाका प्रचार हो। गीताका प्रचार करे, गीताके भाव दूसरोंमें भर दे। गीता बेचना या गीताप्रेसमें काम करना या गीता-प्रचारमें सहायता करना—ये सभी सेवा है। गीता नि:शुल्क देना भी प्रचार है। मनमें यह भाव हो गया कि गीताका प्रचार हो, यह बहुत अच्छा है, बहुत बड़ी भारी सेवा है। सबका उद्धार करें, सब भगवान्‌के भक्त बन जायँ, भगवान्‌से यह प्रार्थना करना निष्काम है सकाम नहीं। अपना उद्देश्य यह नहीं रखना चाहिये कि अपना उद्धार हो जाय। सारे संसारका उद्धार होगा तो अपना तो स्वयं हो ही जायगा। मेरे बदलेमें सबका हो तो और भी अच्छी बात है, इस तरहकी भावना बहुत ऊँचे दर्जेकी है। तन-मनसे जितना लाभ हो सकता है, उतना धनसे नहीं हो सकता। मैं कोई लौकिक-सेवाके लिये

या धनके लिये नहीं कहता, लेकिन मनुष्यके लिये कह देता हूँ।

मर जाऊँ माँगू नहीं अपने तनके काज।
परमारथके कारने मोहि न आवे लाज॥

यह बड़ी माँग है। रुपये माँगना छोटा है। जो बेचारे धनके दास हैं उनको धन प्राणसे प्यारा है। रुपयोंके कारण काम नहीं रुकता है, सेवाकी कमीके कारण काम रुकता है। एहसान करके भी दूसरा सेवा करे तो स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु रुपयोंके लिये किसीका एहसान नहीं सहते। रुपयोंका बड़ा दायित्व आता है। धन अपने स्वार्थमें नहीं खर्च किया, लेकिन यदि नाम हो गया तो कलंक है। संस्था करे तो कोई नुकसानकी बात नहीं है। गीता भी भगवान्‌की है। शरीरसे सेवा करनेका भार हमपर आये तो हमें कर लेना चाहिये। हमें तो सदा ही हलका रहना चाहिये, उनकी वस्तु उन्हें सौंप देनी चाहिये। वे ही लेने-देनेवाले दोनों हैं, हम तो बिचौलिये हैं। दलाली करनेवालेको भी कुछ मिल जाता है। नाम हो, शरीरकी सेवा या दलालीका लोभ होना नीचा दरजा है, ऐसी दलाली कलंक है।

गीताका प्रचार करना और हरेक भाईको भजन-ध्यानमें लगाना परम सेवा है। मैं कोई भी शब्द सहेतुक कहता हूँ, बिना हेतु नहीं कहता। एक मिनट भी व्यर्थ न बीते यह आपके हाथकी बात है। अगर आपका समय बिताना मेरे हाथमें हो तो आप कह सकते हैं कि अच्छे काममें बितायें। आपका समय आपकी भूलसे व्यर्थ बीत रहा है।

मेरा समय आपके अर्पण करनेपर वापस नहीं मिलता, इसी प्रकार अपना समय भगवान्‌को अर्पण कर देनेपर बदलेमें कुछ माँगनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये एवं भगवान्‌से प्रार्थना करनी

चाहिये कि यदि मेरे कोई माँगनेका भाव पैदा हो जाय तो आप उसकी पूर्ति न करें। बहुत मार्केकी बात है। कल्याण करनेकी हिम्मत हो तभी किसी आदमीकी जिम्मेदारी अपने हाथ लेनी चाहिये, अन्यथा नहीं लेनी चाहिये, क्योंकि उसकी पूँजी नष्ट होगी। दोनोंकी शामिल होकर कल्याण होगा। फिर भी न हो तो उसकी तो पूँजी खाली हो जाती है। यह साधककी बात है। जिसकी योग्यता भगवत्प्राप्ति करानेकी कम है, वह यदि किसीकी जिम्मेदारी ले ले तो उसका अल्प साधन भी खर्च हो जाता है।

यदि कोई अपने पास भगवत्प्राप्तिके लिये आये तो उसे भगवान्‌को सम्भला दें कि आप सामर्थ्यवान् हैं। भगवान्‌के पास भरपूर भण्डार है। अपने ग्राहकको भगवान्‌को सम्भला दे। बड़े घर लगा दे। गुरुपनेका अभिमान छोड़ दे। हमारा कल्याण होगा तो कल्याण करेंगे। मेरे पीछे मत रहो, परमात्माके पीछे जाओ।

स्वभाव परिवर्तनके लिये एकान्तमें बैठकर उपाय सोचे, जिसका स्वभाव अच्छा हो उसका संग करे। अभ्यास और वैराग्यसे मनको काबूमें करे। एकान्तमें बैठकर ध्यान कर रहा है, व्यर्थकी फुरणा हो, संकल्प हो तो यह समय न परमार्थमें बीता, न स्वार्थमें बीता। मृत्यु आ जायगी तो खा जायगी, ऐसे व्यर्थके संकल्पोंसे तुझे किस बातकी सिद्धि होगी, इस प्रकार मनको समझाये, इसका नाम विवेक है। मेरे तो यह सब काम पड़ा हुआ, किया हुआ है। निकम्मा नहीं रहना चाहिये।

किसी आदमीको साला आदि कह दे, स्वभाववश मुँहसे निकल गया तो यह बुरी आदत है, ऐसा मनको समझाकर इस

आदतको हटाये। मनका संकल्प तो बीज है, बीजमें सब कुछ भरा पड़ा है, उसका संस्कार मनमें पड़ता है।

पापसे क्या होगा? उसका फल मिलेगा। पाप करनेपर तीन फल होते हैं—

१. नरक जाना।

२. पशु-पक्षी योनिमें जाना।

३. इसी जन्ममें भोग लेना।

अतः विवेक द्वारा मनको समझाकर पापकर्मसे विरत होना चाहिये।

भगवान्‌की लीलामें गुण, प्रभाव देखें

बहुत महत्त्वपूर्ण बात बतायी जाती है जिसे काममें लाया जाय तो प्रत्यक्ष फल है। सबसे बढ़कर बात है कि भगवान्‌का हर समय ध्यान रखे।

भगवान्‌की मोहनी-मूर्तिको हमेशा हरदम अपने साथ देखता रहे। सारी दुनियामें जैसे प्रकाश है, वैसे सब जगह भगवान् हैं। ज्ञानमय, आनन्दमय हैं; समता, शान्ति और प्रसन्नता है। वे प्रभु हमारे सामने साकार खड़े हैं, सामने हँस रहे हैं। हम एकान्तमें भगवान्‌से बात कर रहे हैं कि आपके प्रत्यक्ष दर्शनमें विलम्ब क्यों हो रहा है?

भगवान्—काम तो हो रहा है।

साधक—प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ।

भगवान्—वियोग भी तुम्हारे लिये लाभदायक है।

भगवान्‌का प्रभाव बहुत पड़ता है। भगवान्‌के पास विपरीत परिस्थिति आनेपर भी क्रोध नहीं आ सकता। अपनेमें प्रसन्नता, शान्ति देख रहे हैं, चेतनता देख रहे हैं, ज्ञानका प्रकाश देख रहे हैं, ये सब भगवान्‌के प्रभाव हैं। जितने गुणोंका विकास है, वह प्रभुका प्रभाव है; क्योंकि सभी गुणोंके समुद्र हमारे पास खड़े हैं। हम सब प्रभुकी लीला देख रहे हैं। भगवान्‌में कितनी दया, शान्ति, समता और प्रेम है। प्रेममें तो वे बिक जाते हैं। इतना द्रवीभूत हृदय है कि पिघल जाता है। प्रभुका व्यवहार देखिये। रावणका भाई विभीषण मिलनेके लिये आ रहा है। सुग्रीव कहते हैं कि क्या पता इसके मनमें क्या बात है? इसको बाँधकर कैद कर लेना चाहिये।

प्रवचन-तिथि—आश्विन शुक्ल १५, संवत् १९९५, बाँकुड़ा।

भगवान्‌ने कहा—राजनीतिके अनुसार तुम्हारी बात बड़ी अच्छी है, किन्तु मेरा स्वभाव है कि जो कोई मेरी शरण आ जाता है, मैं उसका त्याग नहीं करता। हनुमान्‌जी कहते हैं—उन्हें बुलाना चाहिये। आनेपर भगवान् उसका राजतिलक कर देते हैं और भगवान् संकोचमें भी पड़ जाते हैं कि मैं क्या देता हूँ।

विभीषण विचार करता है कि जिस लंकाके लिये रावणने अपने मस्तक भगवान् शंकरको अर्पित कर दिये, वह राज्य प्रभुने क्षणभरमें दे दिया, इसमें भगवान्‌की कितनी दया है।

इसी प्रकार जब पूतना भगवान् कृष्णको विष देनेके लिये आती है, उसे मुक्ति देते हैं, यह बहुत उदारताकी बात है।

अर्जुनके साथ कितनी मित्रता है। युद्धके पूर्व दुर्योधन एवं अर्जुन भगवान्‌के पास सहायताके लिये गये। भगवान्‌ने कहा—एक ओर मेरी नारायणी सेना रहेगी एवं एक ओर मैं बिना शस्त्र धारण किये रहूँगा। अर्जुनने भगवान्‌को स्वीकार किया एवं दुर्योधन प्रसन्नतापूर्वक नारायणी सेना लेकर चला गया। दुर्योधनके जानेके बाद भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—तुमने बड़ी मूर्खता की जो मेरी अजेय नारायणी सेनाको छोड़कर शस्त्ररहित मेरा वरण कर लिया। यह भगवान्‌का विनोद है।

लीलाको स्मरण करें, लीलामें समता, नीति, कौशल, व्यवहार आदिमें भगवान्‌के गुण, प्रभावको याद करके हरदम कभी ध्यान, कभी बातचीत, कभी शरण होकर मैं आपका दास हूँ, आपकी शरण हूँ, ऐसा कहते हुए कभी रोना चाहिये, कभी हँसना चाहिये।

श्रद्धा, प्रेमसे महान् लाभ

भगवान्के भजनमें यह श्रद्धा करे कि भगवान्के भजनसे सब पाप नष्ट होते हैं। इस भावसे भजन करनेसे लाभ नहीं हो तो समझना चाहिये कि भजनमें कमी है। पारससे लोहा छुआ तो सोना होना चाहिये, नहीं हो तो खोज करनी चाहिये कि कहाँ खोट है, ऐसे ही भजनमें क्या कमी है खोज करनी चाहिये।

सत्संग करनेसे सदाचार, सद्‌गुण आते हैं, भगवान्की स्मृतिकी वृद्धि, भगवान्के स्वरूपमें स्थिति, आनन्द, शान्ति और विषयोंसे वैराग्य होता है। इन बातोंकी कमी रहनेपर कारण खोजना चाहिये और उसका सुधार करना चाहिये। दस लोग मिलकर वार्तालाप करें तो सत्संग होगा। गंगा किनारे एकान्तमें बैठकर ध्यान करे, यह भावना करे कि यह पवित्र तीर्थभूमि है, यहाँ स्वाभाविक ही ज्ञान, वैराग्य, प्रसन्नता होती है, भजन-ध्यान करे तो मन अच्छा लगेगा। सब बात प्रामाणिक है। श्रद्धा न होनेके कारण उस लाभसे वंचित रहते हैं।

गंगाजल पीनेसे, गंगाजीमें स्नान करनेसे, आचमनसे भगवान् मिल जाते हैं यह श्रद्धा रखे, पवित्रता रखे, गंगाजीमें टट्टी, पेशाब न करे। श्रद्धा करना बड़े महत्त्वकी बात है। गीताकी पुस्तकमें खूब श्रद्धा करनी चाहिये। इसकी शिक्षाके अनुसार साधन करनेसे कल्याण हो जाय, इसमें तो बात ही क्या है। पढ़नेसे ही आगे जाकर कल्याण हो जाता है, इससे ज्ञान होता है, इस तरह इस पुस्तकमें श्रद्धा करनी चाहिये।

प्रवचन-तिथि—आश्विन शुक्ल १५, संवत् १९९५, रात्रि, बाँकुड़ा।

भगवान्‌के चित्रमें, मानसिक ध्यानमें श्रद्धा करे, विश्वास करे कि भगवान् बाध्य होकर दर्शन देंगे। साधक जिस चित्रके अनुसार ध्यान करता है, उसी तरहका दर्शन होता है। यथार्थ दर्शन बादमें होता है।

भगवान्, तीर्थ, सत्संग एवं परलोकमें जितनी अधिक श्रद्धा करे उतना अधिक फल है।

परमात्मप्राप्त पुरुषसे मनुष्य चाहे जितना लाभ उठा सकता है, श्रद्धा चाहिये। परमात्माकी प्राप्तिका विषय एक साधारण मनुष्य कहता है तो उससे साधारण लाभ है, प्राप्तिवाला पुरुष कहता है तो उससे अधिक लाभ है। इसमें भी प्राप्तिवाला पुरुष होते हुए भी श्रोताकी जैसी श्रद्धा होगी वैसा लाभ होगा। हमलोग महात्माओंके पास जाते हैं तो श्रद्धासे उनकी बातें बहुत प्रभाव डालती हैं। वे ही यदि शास्त्रोंसे पढ़ी जायँ तो उसका प्रभाव कम पड़ता है, यह सामान्य लाभ है। महात्माओंसे विशेष लाभ होता है। जैसे सूर्य, अग्निमें प्रकाश है, वह सामान्य भावसे सभीको प्राप्त है, किन्तु ज्वालामुखी काँचमें विशेषता है। काठमें चिलका पड़ता ही नहीं, प्रकाश तो सभीको मिलता है, किन्तु शीशा, ज्वालामुखी शीशा एवं काठका भेद है। ऐसे ही आकाशसे जल एक-सा ही स्वादु एवं निरोगकर बरसता है, किन्तु अलग-अलग बीजोंको अलग-अलग वृक्षके रूपमें परिणत करता है।

श्रद्धा न होनेमें नास्तिकताका संग और पूर्वकृत कर्म कारण हैं। पूर्वकृत कर्मोंके अन्तर्गत स्वभाव, वृत्ति सब आ जाते हैं। गुण, स्वभाव, वृत्ति सब कर्मसे ही बनते हैं।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥

जितने भी श्रद्धाके स्थल जप, ध्यान, महात्मा एवं ईश्वर हैं, इनमें जितना विश्वास करें, उतना ही उनका प्रभाव है।

ईश्वरका प्रभाव अपरिमित है, उसका नाप-तौल नहीं है। हम मनसे जितना मान लें उससे बहुत अधिक, असीम प्रभाव है। वे असम्भवको सम्भव कर सकते हैं।

एक आदमी अणिमादि सिद्धियोंको दिखाता है यह भी प्रभाव है, किन्तु परमात्माकी प्राप्तिके सामने यह कुछ भी नहीं है। ईश्वर चाहे सो कर सकते हैं, चाहें तो एक क्षणमें सभीका कल्याण कर सकते हैं। सारा ब्रह्माण्ड उन परमात्माके एक अंशमें स्थित है, वह परमात्मा ऐसे प्रभावशाली हैं। प्रभाव शक्ति विशेष है। प्रलय और उत्पत्ति करनेकी भगवान्‌में जो शक्ति है, उसका नाम प्रभाव है।

भगवान्‌के प्रेमकी बात अलौकिक है, अद्‌भुत है, बतायी नहीं जा सकती, यह वाणीका विषय नहीं है। परमात्मा प्रेमस्वरूप, प्रेमकी मूर्ति हैं।

एक साधारण मनुष्य भगवान्‌से प्रेम करे तो भगवान् यह नहीं सोचते कि मैं एक तुच्छसे क्या प्रेम करूँ। लोग मतलबसे या धनीसे प्रेम करते हैं, उसका आदर करते हैं, गरीबका नहीं। भगवान्‌में यह बात नहीं है। वे सबसे समतासे प्रेम करते हैं। प्रेम करनेलायक भगवान् ही हैं और सब स्वार्थी हैं। देवता भी स्वार्थी हैं। भगवान् हमें चाहते हैं और हम भगवान्‌को चाहते हैं। सब प्रकारसे प्रेम करनेके पात्र भगवान् हैं। भगवान् आनन्दकी खान हैं। यह विश्वास हो जाय तो संसारकी किसी चीजसे प्रेम नहीं कर सकता। जबतक दूसरी चीजोंसे प्रेम करता है, तबतक भगवान्‌का प्रभाव नहीं समझा।

प्रश्न—बिना देखी चीजमें प्रेम कैसे हो?

उत्तर—भगवान्से बढ़कर दुनियामें कोई चीज नहीं है। मेरा भगवान्में प्रेम होना चाहिये, यह निश्चय कर लें तो प्रेम हो जाय।

प्रश्न—भगवान्से प्रेम करना चाहते तो हैं।

उत्तर—चाहनेमें एक शर्त है। भगवान्में प्रेम करना चाहे तो प्रेम हो सकता है। जबतक तुम दूसरी चीजमें प्रेम करोगो, तबतक भगवान्में विश्वास नहीं हुआ, यह विश्वास हो जाय तो प्रेम स्वतः ही हो जाय। कोई भी बढ़िया चीज छोड़कर घटियामें प्रेम नहीं करना चाहता। विश्वासकी आवश्यकता है, यही श्रद्धा है, भगवान्के सिवाय कुछ नहीं चाहनेपर यह बात हो जायगी। प्रभुके सिवाय सबसे प्रेम हट जायगा तो भगवान् रुक नहीं सकेंगे।

भगवान्की घोषणा है कि मेरे साथ जो प्रेम करे, उसके साथ मैं प्रेम करता हूँ। दूसरी चीजमें प्रेम है वह कलंक है।

एकनिष्ठ प्रेम कर ले तो भगवान् ठहर नहीं सकते। भगवान्को छोड़कर किसी चीजमें प्रेम करना टट्टी-पेशाबमें प्रेम करना है। ऐसा प्रेम वेश्याके प्रेमके समान है। प्रभुमें प्रेम करके दूसरी चीजमें प्रेम करना कलंक है।

चाहे सर्वस्व चला जाय, हमें भगवान्से प्रेम करना है, यह उत्तम बात है। उससे उत्तम बात यह है कि सर्वस्व जानेमें सर्वस्वको आदर दिया। सर्वस्व तो जाना अच्छा है। प्राण देकर भी प्रभुमें प्रेम करना करना अच्छा है। हृदयमें निश्चय कर लें तो प्रेम हो जाता है। भगवान्से जल्दी मिलना हो तो दूसरी चीजोंसे प्रेम हटाकर भगवान्में लगावें।

परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं। इसकी ही प्रशंसा है।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(गीता ९। ३४)

मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

(गीता ८। ७)

इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।

सत्संगकी बहुमूल्य बातें

संसारकी परमसेवा करनेवालेके उद्धारमें तो संशय ही नहीं है, केवल ऐसा भाव रखनेवालेका भी उद्धार हो सकता है।

अपने धर्मके पालनसे कल्याण निश्चित है।

गीताका प्रचार सभी जाति, धर्मके लोगोंमें करना चाहिये। विद्वत्ता एवं त्याग जिस समाजमें होगा वह नहीं गिर सकता है। विद्वत्ता एवं त्याग दो पंख हैं। असली पंख तो त्याग है, दूसरा विद्वत्ता है। ऐसे पाँच सौ व्यक्ति तैयार हो जायँ तो सत्ययुग आ जाय।

गीता पढ़ते समय कृष्ण व अर्जुनको सामने देखना चाहिये।

प्रेमीसे मिलनेसे रोमांच होना चाहिये।

भक्तके संगसे प्रेम उत्पन्न होता है। भगवान् कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गीता ४। ११)

मैं जिसे ज्यादा प्यारा लगता हूँ, वह मुझे भी वैसा ही प्रिय लगता है। मुझसे जो प्रेम करता है वह मुझे प्यारा लगता है।

स्त्रियोंमें प्रायः ये दोष प्रधान हैं—

१. वाणीका असंयम। २. मूढ़ता। ३. मर्म समझनेकी शक्तिकी कमी। ४. सकामभाव। ५. बात सुने उसका उलटा अर्थ लगा लेना।

जिस प्रेममें ईर्ष्या नहीं होती वह प्रेम ऊँचे दर्जेका है।

त्याग करनेयोग्य बातें—

१. शौकीनीका त्याग एवं गहने, कपड़ों आदिमें प्रीति छोड़नी चाहिये।

२. किसीको ताना नहीं मारना चाहिये।

३. अपनी बड़ाईकी बात नहीं सुननी चाहिये।

४. अपनी बड़ाई स्वयं नहीं करनी चाहिये। ऐसा करनेवालेकी त्रिशंकुकी तरहकी दशा होती है अर्थात् उसका पुण्य समाप्त हो जाता है।

५. मूर्खता, ६. असभ्यता, ७. हँसी-मजाक, ८. महात्मा, ईश्वर आदिसे कामना, ९. झूठ बोलना, १०. कामसे जी चुराना, ११. सबके हितका बर्ताव न करना, १२. काम, १३. क्रोध, १४. लोभ, १५. मोह, १६. अहंकार, १७. मत्सरता, १८. निन्दा, १९. कपट, २०. व्यभिचार, २१. संग्रह, २२. दूसरेको कष्ट देना, २३. भूत आदिका भय और २४. अपवित्रता।

परमार्थ-पत्रावली

श्रीसोनीरामजी गोयन्दका! चूरू   आश्विन शुक्ल १५, संवत् १९७९

श्रीगीताजीको अर्थसहित कंठस्थ करनेके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। संसारमें श्रीगीताजीके समान कोई भी शास्त्रकी पुस्तक नहीं है। इसलिये श्रीगीताजीका अभ्यास बहुत चेष्टाके साथ करना चाहिये। श्रीगीताजीका अभ्यास अच्छी तरह होनेके बाद कुछ भी चिन्ता नहीं है। उसके अनुसार चला जाय तो बात ही क्या है? एक श्लोक भी भगवत्प्राप्तिके साधनवाला धारण हो जाय तो उद्धार हो सकता है। श्रीपरमात्मादेवकी शरण होनेके बारेमें आपने लिखा कि मेरे पुरुषार्थकी त्रुटि बहुत है तो फिर कैसे काम चलेगा? पुरुषार्थ तो आपका ही काम आयेगा। दूसरेका पुरुषार्थ क्या काम आयेगा। आपको विचारना चाहिये, समय बीता जा रहा है। गया हुआ समय वापस नहीं आता। ऐसा विचार करके इस नाशवान्, क्षणभंगुर शरीरके द्वारा अपने कल्याणके लिये भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगका साधन बहुत शीघ्रताके साथ करना चाहिये।

× × ×

श्रीजुहारमलजी सांगानेरिया!   आश्विन शुक्ल १५, संवत् १९७९

श्रीभगवान्‌के दर्शनोंकी बात लिखी सो भगवान्‌में प्रेम होनेसे भगवान्‌का दर्शन हो सकता है, श्रद्धा होनेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। उनके गुण, नाम एवं प्रभावकी बात सुननेसे तथा उनका प्रभाव और गुण जाननेसे उनमें श्रद्धा होती है, इसलिये शास्त्रोंका विचार और सत्संग करना चाहिये। सत्संगसे भजन, ध्यानका साधन भी तेज होता है। जितना हो सके उतना निष्कामभावसे स्वार्थ छोड़कर परोपकार भी करना चाहिये। यदि कुछ भी नहीं हो तो किसीकी आत्माको भूलकर भी कुछ कष्ट नहीं पहुँचाना

चाहिये। नारायणके नामका जप करना चाहिये तथा भजन-ध्यानके साधनके लिये भी विशेष कोशिश करनी चाहिये। समय बहुत कम रह गया है।

× × ×

श्रीहरिबक्सजी बाजोरिया! गौहाटी आश्विन शुक्ल १५, संवत् १९७९

भगवान्‌में प्रेम होनेका उपाय पूछा सो इस प्रकार है—

१. श्रीभगवान्‌के नामका जप निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर करनेकी चेष्टा करनेसे बहुत शीघ्र भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

२. भगवान्‌के गुण, प्रभाव तथा प्रेमकी बात यदि भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंसे सुनी जाय तो बहुत शीघ्र भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। उनके भक्तोंका संग यदि नहीं हो तो श्रीगीताजीका अर्थसहित अभ्यास करनेसे तथा इसके अनुसार साधन करनेसे बहुत शीघ्र प्रेम हो सकता है।

३. जहाँ-जहाँ मन जाय उस जगह भगवान्‌के ध्यानका अभ्यास करनेसे भगवान्‌में शीघ्र प्रेम हो सकता है।

४. श्रीगीताकी आज्ञानुसार निष्कामभावसे कर्म करनेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

५. सर्वजनोंकी सेवा निष्कामभावसे करनेसे और किसीकी आत्माको किसी प्रकार भी कष्ट नहीं पहुँचानेसे भी भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। ऊपर लिखे उपायोंमेंसे एक भी उपाय करनेसे भगवान् मिल सकते है।

× × ×

श्रीडूंगरमलजी! तिनसुकिया आश्विन शुक्ल १५, संवत् १९७९

भगवान्‌का चिन्तन नहीं भूले ऐसा प्रेम किस तरह हो इसका उपाय इस प्रकार है—

एकान्त सेवनका साधन बन सके तो नित्य तीन घंटा अवश्य करना चाहिये, अधिक होवे तो और भी आनन्दकी बात है। एकान्तमें एक सत्, चित्, आनन्दघन परमात्माका ध्यान नाम-जपके साथ करना चाहिये। एक सत्, चित्, आनन्दके सिवाय और कुछ नहीं है। उनका नाम उस भगवान्के संकल्पका ही आधार है—इस प्रकार मानना चाहिये। उनके नामका जो अर्थ है वही भगवान्का स्वरूप है। ॐ का अर्थ है सत्, चित्, आनन्द; इसलिये नाम और अर्थमें भेद नहीं है। यानि नाम और नामीमें भेद नहीं है। भेद कल्पितमात्र है। असलमें एक ही बात है। इस प्रकार समझना चाहिये। बीच-बीचमें यदि आलस्य या फुरणा हो तो श्रीगीताजीका अर्थ पढ़कर उसका विचार करना चाहिये। गीताजीमें ध्यानके तथा भगवान्की प्राप्तिविषयक श्लोकोंके अर्थ पढ़कर उनका भाव समझना चाहिये। इसमें मन लगाकर कुछ ध्यानकी बात समझमें आवे तब फिर ध्यानमें मग्न होकर एकदम ध्यानमें लग जाना चाहिये।

× × ×

श्रीमालीरामजी! डिबरूगढ़ आश्विन शुक्ल १५, संवत् १९७९

आपने लिखा कि संसारके लोग भक्त बन जायँ ऐसा उपाय लिखना चाहिये। यह बहुत ही पुरुषार्थका काम है। मन, तन, धन सब भगवान्के अर्पण करके लोगोंका निष्काम उपकार करनेसे संसारके और भी व्यक्ति भगवान्की भक्तिमें लग सकते हैं। सभी मनुष्योंको श्रीनारायणदेवजीकी भक्तिमें लगाना कोई साधारण काम नहीं है। इस काममें लगन हो तो तन, मन, धनसे सबकी सेवा करनी चाहिये। शास्त्रका भी कुछ अभ्यास करना चाहिये। श्रीगीताजी अर्थसहित और श्रीरामायणजी अवश्य याद होनी

इसलिये आपको लिखना है कि यदि नारायणदेवके साथ अनन्य प्रेम करना हो तो श्रीगीताजीका प्रचार करनेके लिये लोगोंको सत्संगमें लगाना चाहिये। भजन, सत्संग करनेसे बहुत लाभ है। दूसरोंको इस काममें लगानेसे भी बहुत लाभ है। यदि एक जीव भी संसारके तापसे सदाके लिये मुक्त हो जाय तो कितने आनन्दकी बात है। आपको भी भजन, ध्यान, सेवा, सत्संगकी विशेष कोशिश करनी चाहिये। दिन-प्रतिदिन साधन ऊँचा होना चाहिये। विचारना चाहिये कि इस प्रकार चलनेसे कितने दिनमें मार्ग कट सकता है। मार्ग शीघ्र कटे इसके लिये बहुत तेज साधनका अभ्यास बहुत चेष्टा एवं शीघ्रतासे करना चाहिये।

× × ×

श्रीगनपतरायजी सर्राफ! आश्विन कृष्ण ७, संवत् १९७९

आपने जोरका वैराग्य तथा भगवान्‌में प्रेम होनेकी बात पूछी सो भगवान्‌में पूर्ण प्रेम होनेसे संसारसे वैराग्य स्वतः ही हो जाता है।

१-जब भगवान्‌के नामका जप, स्वरूपका ध्यान, भगवान्‌की भक्ति, निष्काम प्रेम एवं प्रभावकी बात अच्छी लगे और संसारके भोग एवं शरीरके आरामकी बात अच्छी न लगे, तब जान लेना चाहिये कि भगवान्‌में प्रेम और संसारमें वैराग्य हो गया।

२-इस प्रकार होनेके लिये भगवान्‌के निष्काम प्रेमी भक्तोंका संग, भगवान्‌के गुणानुवाद-प्रेमकी पुस्तक पढ़ने-सुननेसे, शास्त्रका अभ्यास तथा भगवान्‌के नामका जप करनेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। भगवान्‌में प्रेम हो इसीलिये भगवान्‌का भजन, ध्यान, सत्संगकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

३-संसारके भोग क्षणभंगुर और मिथ्या हैं, क्षणिक सुखरूपसे

भासते हैं, किन्तु परिणाममें दुःख देनेवाले हैं। शरीरका निर्वाहमात्र हो, इतने पदार्थ ही स्वीकार करने चाहिये और भोगोंको छोड़ देना चाहिये। संसारका भोग भोगनेसे मनुष्यकी बुद्धि नष्ट होकर वह धोखेमें फँस जाता है।

४-मन स्थिर करनेके लिये जहाँ मन जाय वहीं चतुर्भुज नारायणका स्वरूप देखना चाहिये। आभास नहीं हो तो भगवान्‌का चित्र सामने रखकर अभ्यास करना चाहिये तथा रामनामको सब जगह देखना चाहिये। सारा संसार रामनामसे जड़ा हुआ है, ऐसी कल्पना करनी चाहिये। जैसे सोनेमें रत्न जड़े हुए हैं, उसी प्रकार सारे संसारमें रामनामको जड़ा हुआ समझना चाहिये। भगवान्‌के नाममें प्रेम नहीं होता है ऐसा आपने लिखा है सो निष्कामभावसे मान-बड़ाईको छोड़कर निरन्तर नाम-जपका अभ्यास विश्वाससे करना चाहिये। नामजप मनसे होनेसे ही प्रेम होनेकी सम्भावना है।

× × ×

श्रीरामप्रकाशजी गोयन्दका! आश्विन कृष्ण ४, संवत् १९७७

तुमने लिखा कामकाज हो सो लिखें सो कामकाज बहुत ही है। जिस कामके लिये तुम आये हो वह काम करना चाहिये। मनुष्यका शरीर केवल पेट भरनेके लिये ही नहीं मिला है, अपितु भगवान्‌के दर्शनके लिये मिला है। यदि भगवान्‌के बिना मिले इस संसारसे जाना हो गया तो बहुत हानि है। इसलिये विचार करके सबसे पहले वह काम करना चाहिये जिस उपायसे भगवान् मिलें। कलियुगमें भगवान्‌के मिलनेका सबसे उत्तम और सुगम उपाय नारायणके नामका निष्कामभावसे निरन्तर जप है। नामजपसे ही भगवान्‌में पूर्ण प्रेम हो सकता है और प्रेम हुए बिना भगवान् नहीं मिल सकते। भगवान्‌में ऐसा निष्काम प्रेम होना

चाहिये कि फिर वे कभी भूलें नहीं। जब भगवान्‌में इतना प्रेम हो जायगा फिर भगवान् उसके ही हो जायँगे। फिर संसारमें उसके लिये कुछ काम नहीं है। फिर भी लोगोंके उद्धारके लिये उन्हें भगवान्‌की भक्तिमें लगाना ही उसका काम है। उत्तम पुरुष इसी प्रकार करते आये हैं।

× × ×

वैशाख कृष्ण ३०, संवत् १९७८

श्रीबद्रीदासजी गोयन्दकासे जयदयालका प्रेमसहित राम-राम। इस मिथ्या स्वप्नवत् असार संसारकी ओरसे चित्तको हटाकर श्रीसत्, चित्, आनन्दघन परमेश्वरमें प्रेम करना चाहिये। मनको हरनेवाले उस मनमोहनको कभी चित्तसे बिसारना नहीं चाहिये। इस मिथ्या संसारके विषय भोगोंमें अमूल्य समयको नहीं बिताना चाहिये। निरन्तर वैराग्यमें रहना चाहिये। संसारकी तरफसे हर समय उपराम ही रहना चाहिये। संसारका काम शरीरके निर्वाहमात्र तथा लोगोंके हितके लिये कुछ करना पड़े उस समय भी आनन्दघन परमात्मामें मग्न रहकर जो सम्भव हो उतना काम करना चाहिये। जो कुछ भी हो, सच्चे प्रेमी नारायणको कभी नहीं भूलना चाहिये। क्या मालूम किस समय इस असार संसारसे रवाना होना पड़ेगा। सच्चे प्रेमी नारायणके चिन्तनकी गाढ़ स्थिति हुए बिना ही मृत्यु प्राप्त हो जाय तो बड़ा खतरा है, इसलिये निरन्तर चिन्तन होता रहेगा तो फिर चाहे जब मृत्यु आये कोई चिन्ता नहीं।